ऋषि प्रसाद

वर्ष : १५ अंक : १४७
मार्च २००५ मूल्य : रु. ६-००
फाल्गुन-चैत्र, वि.सं.२०६१

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक : रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में

(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

कार्यालय **'ऋषि प्रसाद'** श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

अनुक्रम

सत्गुरु संग होरी खेलिये...

सत्गुरु संग होरी खेलिये, जा तें जरा मरण भ्रम जाय।
ध्यान जुगत की करी पिचकारी, क्षिमा चलावनहार।
आतम ब्रह्म जो खेलन लागे, पाँच–पचीस मँझार[1] ॥
ज्ञान गली में होरी खेलैं, मची प्रेम की कीच।
लोभ मोह दोऊ कटि भागे, सुन–सुन सब्द अतीत ॥
त्रिकुटी महल में बाजा बाजै, होत छतीसों राग।
सुरत सखी जहँ देखि तमासा, सत्गुरु खेलैं फाग ॥
इंगला पिंगला सुषमना हो, सुरत निरत दोऊ नारि।
अपने पिया संग होरी खेलैं, लज्जा–कानि निवारि ॥
सुन्न सहर में होत कुतुहल, करैं राग अनुराग।
अपने पुरुष के दरसन पावैं, पूरन प्रेम सुहाग ॥
सत्गुरु मिले अगुवा निज पायो, मारग दियो लखाय।
कहैं 'कबीर' जो यह गति पावै, सो जिव लोक सिधाय ॥

१. मध्य में

निरंजन वन में साधु अकेला खेलता है।
निरंजन वन में जोगी अकेला खेलता है ॥
तन की कूंडी मन का सोटा, हरदम बगल में रखता है।
पाँच–पचीसों मिलकर आवें, उनको घोंट पिलाता है ॥
निर्गुण रोटी सबसे मोटी इसका भोग लगाता है।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो अमरापुर फिर जाता है ॥

सद्गुरु प्रेम दरस रस बरसे...

सद्गुरु प्रेम दरस रस बरसे, जैसे सावन की झड़ी।
सावन की झड़ी, प्यारे गुरुभक्तों पे पड़ी ॥
गुरुवर ने सब प्रेम नगीने, भक्त–हृदय में हों जड़ दीन्हे।
भक्ति सोहे ऐसे जैसे, मोतियों की हो लड़ी ॥
प्यारे बापू का रूप निहारें, केसुड़े की पड़ें बौछारें।
चलो हृदय रँगवा आवें, टूटेगी चौरासी की कड़ी ॥
रोम–रोम को नैन बना लो, गुरुवर के तुम दरसन पा लो।
जन्मों बाद आयी है ये, दरसन की पावन घड़ी ॥
वासना की सुरा भाँग पीके, उन्मत्त हो सारी दुनिया अटके।
भाग्यवान तो वे हैं जिनको, गुरु की नजरों की चढ़ी ॥
अबीर–गुलाल प्रेम–प्रीति का, रंग हृदय में भर भक्ति का।
होली खेल हरिरस में तू, काहे दुनिया की पड़ी ॥

– अजय, अमदावाद।

गुरुज्ञान की होली

मेरा सद्गुरु रस बरसाये रंग बहार का, मन मोहन संसार का...
एक छवि आँखों में उतरी, अब न समाती है कोई दूसरी,
रंग मुझे ना भाये अब संसार का... नित नये ज्ञान की पुड़िया खोले,
फिर माधुर्य के रस में घोले, भक्तों पर छिटकाये छींटा प्यार का...
केसर–कस्तूरी मुझे ना भाये,
दुनियावी रंग अब न सुहाये, मोह मिटा मन से झूठे शृंगार का...
हियरा हुलसे[1] फागुन आये, इस होली को जी ललचाये,
मनवा बस लोभी है ऐसी फुहार का...
क्या मिलता है क्या कोई जाने,
ये रस तो वो ही पहचाने, जो आनंद उठाये इस बौछार का...

१. आनंदित होता है।

– 'चाँद' लखनवी, सहारा स्टेट्स, लखनऊ।

प्रश्न : प्रातःस्मरणीय पूज्य बापूजी ! लोगों को अगर आत्मज्ञान की जरूरत नहीं है तो क्या उन्हें जबरदस्ती आत्मज्ञान दिया जाना चाहिए ?

पूज्य बापूजी : हाँ, आत्मज्ञान एक ऐसी ऊँचाई है कि इसे प्रदान करते समय यह नहीं सोचा जाता कि सामनेवाले को इसकी जरूरत है या नहीं। यह इतना दिव्य अमृत है कि सामनेवाले को इसकी जरूरत महसूस हो तो भी दो और उसे जरूरत न भी महसूस हो तो भी उसमें जरूरत का एहसास जगाकर दो, ताकि उसका कल्याण हो जाय।

जिस-जिस व्यक्ति ने, समाज ने, राष्ट्र ने तत्त्वज्ञान की उपेक्षा की, तत्त्वज्ञान से विपरीत आचरण किया उसका विनाश हुआ, पतन हुआ। उसमें रिश्वतखोरी, कायरता, पलायनवाद और आतंकवाद जैसे दुर्गुण फैले। शास्त्रों में लिखा है :

आत्मलाभात् परं लाभं न विद्यते।

'आत्मलाभ से बढ़कर कोई लाभ नहीं है।'

आत्मज्ञान मनुष्य-मनुष्य के बीच की दूरी मिटाता है, भय-शोक, ईर्ष्या-उद्वेग की आग से तपे हुए समाज को सुख एवं शांति, स्नेह और सहानुभूति, संयम और सदाचार, साहस और उत्साह, शौर्य और क्षमा जैसे दिव्य गुण देते हुए हृदय के अज्ञानांधकार को मिटाकर जीव को ब्रह्म बना देता है।

मंद, म्लान और स्वार्थी मनुष्य को तेजस्वी, कांतिमान और निःस्वार्थ आत्मज्ञान से ही बनाया जा सकता है।

प्रश्न : सद्गुरुदेव ! वास्तविक पुरुषार्थ से क्या अभिप्राय है ?

पूज्य बापूजी : परम पुरुष परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिए किया गया यत्न ही वास्तविक पुरुषार्थ है। बेटे-बेटी को जन्म देना, उन्हें पाल-पोसकर बड़ा करना एवं अपने पैरों पर खड़ा कर देना केवल यही पुरुषार्थ नहीं है। इतना तो चूहा, बिल्ली आदि प्राणी भी कर लेते हैं। वास्तव में बेटे-बेटी को परमात्मा के मार्ग पर अग्रसर करके उन्हें संयम, समता, उदारता, प्रसन्नता व परमात्मसुख से संपन्न करनेवाले संस्कार देना ताकि परम पुरुष के अर्थ अपना और परिवार का जीवन सार्थक हो - यही वास्तविक पुरुषार्थ है। इस वास्तविक पुरुषार्थ को करने के बाद मनुष्य के लिए फिर कुछ करना बाकी नहीं रह जाता, क्योंकि वास्तविक पुरुषार्थ के फलस्वरूप मनुष्य उस पद को पा लेता है, जिसके आगे सब पद नन्हे हो जाते हैं।

प्रश्न : ब्रह्मज्ञान, परब्रह्म-परमात्मा और ब्रह्मविद्या किसे कहते हैं ?

पूज्य बापूजी : जहाँ से विश्व की तमाम बुद्धियों को, दुनिया के बड़े-बड़े वैज्ञानिकों को, बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को प्रकाश मिलता है उस आत्मप्रकाश के ज्ञान को ब्रह्मज्ञान कहते हैं। जहाँ से विश्व को अनादिकाल से ज्ञान मिलता आ रहा है, चतुरों को चतुराई, विद्वानों को विद्या सँभालने की योग्यता, प्रेम, आनंद, साहस, निर्भयता, शक्ति, सफलता, इहलोक और परलोक के रहस्यों का उद्घाटन करने की क्षमता - ये सब जहाँ से मिलता आया है, मिल रहा है और मिलता रहेगा, फिर भी एक तृण जितनी भी जिसमें कमी नहीं हुई, उसे कहते हैं परब्रह्म-परमात्मा।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शांतिः ! शांतिः !! शांतिः !!!

'वह सच्चिदानंदघन परब्रह्म-परमात्मा सब प्रकार से सदा-सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत भी उस परब्रह्म से ही पूर्ण है, क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है। परब्रह्म की पूर्णता से जगत पूर्ण होने पर भी वह परब्रह्म परिपूर्ण है। उस पूर्ण में से पूर्ण निकाल लेने पर भी वह पूर्ण ही शेष रह जाता है।'

परब्रह्म-परमात्मा को, आत्मा को जानने की

विद्या को ही ब्रह्मविद्या कहते हैं।

प्रश्न : सच्चे संत की पहचान क्या है ?

पूज्य बापूजी : सच्चे अफीमची, जुआरी और शराबी की पहचान क्या है ? अगर किसीको सच्चे शराबी का संग मिले तो संग करनेवाला उसके रंग में रँगने लगेगा। यदि किसीको सच्चे अफीमची या जुआरी का संग मिले तो संग करनेवाला भी उसके जैसा बनने लगेगा। ऐसे ही सच्चे सुख के धनी संतों की पहचान यह है कि उनके सान्निध्य में बैठने से लोगों के संदेह निवृत्त होने लगते हैं, चंचलता मिटने लगती है और उन्हें परमात्मा में विश्रांति मिलने लगती है।

प्रश्न : मन हमारा शत्रु भी है और मित्र भी, यह कैसे ?

पूज्य बापूजी : मन अगर इन्द्रियों के विकारी सुखों में भटकता रहा तो चौरासी लाख योनियों में युग-युगांतर तक हमें भटकाता रहेगा - ऐसा खतरनाक शत्रु है यह। मन अगर तप और परमात्मा के ध्यान की ओर मुड़ गया तो यह ऐसा मित्र बन जाता है कि करोड़ों-करोड़ों जन्मों के अरबों-अरबों संस्कारों को मिटाकर इसी जन्म में ज्ञानाग्नि जलाके आत्मा-परमात्मा की मुलाकात करा मुक्ति का अनुभव करा देता है।

प्रश्न : जीवन में जानने योग्य वस्तु क्या है ?

पूज्य बापूजी : जीवन में जानने योग्य वही है जो सबको जानता है। हमारा धर्म, आचार-विचार, संस्कृति, वर्ण-व्यवस्था और इतिहास हमें धक्के देकर भी उसीका ज्ञान पाने की ओर प्रेरित कर रहे हैं। हमारे उत्सव भी हमें उसी एक अनंत भगवत्तत्त्व की ओर प्रेरित करते हैं, जो सबके रोम-रोम में व्याप्त है, सबको चेतना देता है।

प्रश्न : ईश्वर को प्रसन्न करने का मार्ग क्या है ?

पूज्य बापूजी : शरीर की मृत्यु हो जाय उससे पहले अमर आत्मा के अनुभव के लिए प्राणिमात्र की यथायोग्य सेवा कर लेना, यह ईश्वर को प्रसन्न करने का मार्ग है।

और भी सूक्ष्मता से सोचें तो दृष्टि को गलत जगह न जाने देना यह आँख की सेवा है। जिह्वा से गलत शब्द न निकालना तथा उसे स्वादलोलुप न बनने देना यह जिह्वा की सेवा है। कानों से गंदी बातें न सुनना यह कान की सेवा है। मन से गलत विचार न करना यह मन की सेवा है। बुद्धि से हलके निर्णय न लेना यह बुद्धि की सेवा है। शरीर से हलके कृत्य न करना यह शरीर की सेवा है। इस प्रकार जैसे स्वयं को गलत मार्ग पर जाने से रोकना और सन्मार्ग में लगाना यह अपनी सेवा है, ऐसे ही स्नेह और सूझबूझ से यथासंभव दूसरों को भी गलत मार्ग से बचाना और सन्मार्ग की ओर मोड़ना यह उनकी सेवा है।

प्रश्न : भजन किसे कहते हैं ?

पूज्य बापूजी : इष्टाकार वृत्ति, भगवदाकार वृत्ति करके कार्य करना अथवा जो कार्य करने से इष्टाकार वृत्ति, भगवदाकार वृत्ति उत्पन्न होती है, वह भजन कहा जाता है।

शबरी भीलन बुहारी करती थी लेकिन भगवान और सद्गुरु के दैवी कार्यों में भागीदार होकर करती थी। सड़कों पर बुहारी करनेवाली महिला नौकरानी है, पगार लेकर काम करती है। घर में माँ बुहारी करती है, बहन और कुटुम्बीजन कार्य करते हैं वह सेवा है। लेकिन भगवान के नाते अगर बुहारी भी करते हैं तो वह हो जाता है भजन। शबरी भीलन की बुहारी भी भजन हो जाती थी।

रसनं लक्षणं भजनम्।

जिस कार्य में भगवत्स्मृति, भगवत्प्रीति, भगवद्रस हो वह भजन है।

प्रश्न : भजन में रोना और संसार के लिए रोना इसमें क्या अंतर है ?

पूज्य बापूजी : यदि भगवान के लिए भक्तिभाव रखने से आँसू बहते हैं तो पापों का क्षय होता है और योग्यताओं का विकास होता है। संसार के लिए रोने से योग्यताओं का क्षय होता है।

व्यक्ति जब संसार के लिए रोता है तब उसके आँसू आँखों के कोनों से झरते हैं और वे गरम होते हैं, लेकिन जब वह भक्तिभाव में आकर रोता है तब उसके आँसू आँखों के मध्यभाग से झरते हैं और वे पवित्र एवं शीतल होते हैं।

प्रश्न : भजन करनेवाले व्यक्ति में भी काम-क्रोध क्यों दिखते हैं ?

पूज्य बापूजी : अगर भजन करनेवाले व्यक्ति

में काम-क्रोध दिखते हैं तो उसके आहार में दोष है। अशुद्ध आहार से काम-क्रोध पनपते हैं और शुद्ध आहार से नियंत्रित रहते हैं तथा भजन करने से काम-क्रोध विलय होने लगते हैं।

प्रश्न : सुमिरन किसे कहते हैं ? आँखें बंद करके सुमिरन किया जाय या आँखें खोलकर ?

पूज्य बापूजी : सुमिरन आँखें बंद करने से भी नहीं होता और आँखें खोलने से भी नहीं होता। सुमिरन स्मृति से होता है। ज्ञानयुक्त स्मृति को सुमिरन कहते हैं।

जैसे बत्ती (विद्युत लैंप) देखी, ध्वनि-विस्तारक देखा, फ्रिज देखा, कपड़े की सिकुड़न दूर करने की इस्तिरी देखी, मोटर पंप देखा - ये साधन तो अलग-अलग हैं लेकिन सबमें विद्युत एक है। आपके यहाँ अलग-अलग कंपनियों के पंखे होंगे लेकिन सभी पंखों की जिगरी जान एक विद्युत है। हीटर पानी तपाता है तो फ्रिज पानी ठंडा करता है, फिर भी दोनों में विद्युत एक है। ऐसे ही कोई दूसरों को शांति देते हैं, कोई पापी अशांति देते हैं लेकिन उन सबमें सत्ता उसी यार की है। इसी ज्ञानयुक्त स्मृति को सुमिरन कहते हैं।

प्रश्न : साधक के कर्तव्य क्या हैं ?

पूज्य बापूजी : अपने साध्यस्वरूप परमात्मा को पाने में सहायरूप होनेवाले साधन, चिंतन और संग का अवलंबन लेना यह साधक का कर्तव्य है।

साधक समझे कि यही मेरी साधना है। भक्तों व संतों के जीवन-चरित्रों के पठन तथा उनके संग से साधक की साधना मजबूत होती है।

चातक मीन पतंग जब पिया बिन नहीं रह पाये।
साध्य को पाये बिना साधक क्यों रह जाये ?

प्रश्न : विषय रस और भगवद्रस में क्या अंतर है ?

पूज्य बापूजी : विषय रस वासना-विकारों को बढ़ाकर जीव को पराधीन बनाता है और भगवद्रस भगवत्स्वरूप के सुख से जीव को जितात्मा-मुक्तात्मा बना देता है।

प्रश्न : वास्तविक विपदा और वास्तविक संपदा की घड़ियाँ कौन-सी हैं ?

पूज्य बापूजी :

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई।
जब तव सुमिरन भजन न होई॥

(श्रीरामचरित. सुंदर कांड : ३१.२)

वास्तव में वे घड़ियाँ विपत्ति की हैं जब परमात्मा का भजन और सुमिरन नहीं होता और वे घड़ियाँ संपदा की हैं, वे दिन सुहावने हैं जिनमें परमात्मा का भजन और सुमिरन होता है।

विद्वानों, चिंतकों और चिकित्सकों की दृष्टि में ब्रह्मचर्य

* सर्व चरित्र वशीभूत करने के लिए, सभी प्रमादों को टालने के लिए, आत्मा में अखंड वृत्ति रहने के लिए, मोक्षसम्बंधी सभी प्रकार के साधनों पर विजय पाने के लिए 'ब्रह्मचर्य' अद्भुत, अनुपम सहायकर्ता है अथवा मूलभूत साधन है। **- श्रीमद् राजचंद्र**

* जो पूर्ण ब्रह्मचारी है उसके लिए इस संसार में कुछ भी असाध्य नहीं है। **- महात्मा गाँधी**

* जो मनुष्य वीर्य-रक्षा करता है, यदि वह अशुभ कर्मोदय से रोगग्रस्त हो जाता है तो भी उसकी जीवनशक्ति वीर्य-संचय के कारण प्रबल होती है और उसका रोग गंभीर रूप धारण नहीं करता। इस कारण वह शीघ्र ही स्वस्थ हो जाता है। रोग के कारण आयी हुई कमजोरी भी अधिक समय तक टिक नहीं सकती। यदि अब्रह्मचारी एक महीने में ठीक होता है तो ब्रह्मचारी सप्ताहभर में ठीक हो जाता है। **- स्वामी दयानंद सरस्वती**

* बारह वर्ष तक वीर्य को अस्खलित रखने से अर्थात् तेरह वर्ष की उम्र से पचीस वर्ष की उम्र तक तीनों योगों से ब्रह्मचर्य के पालन से जो शक्ति पैदा होती है, उससे उस व्यक्ति की स्मरणशक्ति अतीव तीव्र हो जाती है। वह सब कुछ जान सकता है। **- श्री रामकृष्ण परमहंस**

ईश्वरविश्वास या आत्मविश्वास

❊ सच्ची शांति, सच्चे सुख और सच्ची सफलता का पूर्ण रहस्य ईश्वरविश्वास या आत्मविश्वास है। जब तुम्हें यह विश्वास हो जायेगा कि सुख, शांति और सफलता बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करतीं, वे तुम्हारे आभ्यंतरिक विश्वास पर ही निर्भर हैं तब तुममें उस विलक्षण शक्ति का उदय हो जायेगा, जो बाहरी परिस्थितियों को बदल देगी और सुख, शांति तथा सफलता सहज ही तुम्हें प्राप्त हो जायेंगी।

❊ जब तुम्हें भगवत्कृपा पर विश्वास होगा और तुम भगवान के अनुकूल चलने लगोगे, तब समस्त ईश्वरीय शक्तियाँ तुम्हारी सहायता करने लगेंगी तथा सफलता तुम्हारे सामने घुटने टेककर अपने को स्वीकार करने के लिए प्रार्थना करने लगेगी।

तुम दीन नहीं हो, तुम सर्वलोकमहेश्वर भगवान की संतान हो।

❊ जब तुम्हारा ईश्वर पर विश्वास हो जायेगा, तब तुम्हें यह अनुभव होगा कि तुम्हारे सारे योगक्षेम का भार ईश्वर वहन कर रहे हैं, वे प्रत्येक पतन से तुम्हारी रक्षा करते हैं, तब तुम्हारे अंदर सहज ही निर्भयता और निश्चिंतता आ जायेगी।

❊ ऐसा कोई दोष नहीं है जिसे तुम दूर न कर सको, ऐसी कोई कठिनाई नहीं है जिसे तुम पार न कर सको, ऐसी कोई स्थिति नहीं है जिस पर तुम विजय प्राप्त न कर सको। बस, ईश्वर पर, ईश्वरकृपा पर और ईश्वरीय शक्ति पर तुम्हारा विश्वास होना चाहिए।

❊ ऐसी कोई उत्तम स्थिति नहीं है जो तुम्हें न प्राप्त हो सके, ऐसा कोई उत्तम धाम नहीं है जहाँ तुम्हारी गति न हो और ऐसा कोई उच्च स्तर नहीं है जिस पर तुम न पहुँच सको। भविष्य की सारी विजय तुम्हारे हाथ में है, बस, तुम्हें सर्वशक्तिमान, नित्य परम सुहृद भगवान की अमोघ कृपा पर विश्वास होना चाहिए, भगवान की शरण हो जाना चाहिए और उनके बल से अपने को परम बलवान मान लेना चाहिए।

❊ संसार में सर्वोत्तम, सबसे अधिक संतोषजनक और निश्चित सफलतापूर्ण सिद्धांत यह है कि तुम अनंत-शक्ति भगवान की कृपा पर विश्वास करो और उस कृपा के बल से अपनी आत्मशक्ति को जाग्रत करो। फिर बाहरी प्रतिकूल परिस्थितियाँ तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकेंगी, प्रत्युत उनका रूप बदल जायेगा और वे तुम्हारे अनुकूल होकर तुम्हारी सफलता में सहायक हो जायेंगी।

❊ अपने को हीन समझना और परिस्थितियों के सामने झुक जाना आत्महनन के समान है। तुम्हारे अंदर ईश्वरीय शक्ति है, उस शक्ति के द्वारा तुम सब कुछ करने में समर्थ हो। भगवत्कृपा के बल पर परिस्थितियों को बदलना तुम्हारे हाथ में है। तुम हीन नहीं हो, तुम सर्वलोकपूज्य भगवान के सनातन अंश हो। तुम दीन नहीं हो, तुम सर्वलोकमहेश्वर भगवान की संतान हो। तुम निर्बल नहीं हो, सर्वशक्तिमान महान भगवान का अनंत बल तुम्हारी सहायता के लिए सदा प्रस्तुत है। तुम अपनी महानता पर विश्वास करो और हीनता के मिथ्या संस्कारों को मिटाकर महान बन जाओ।

❊ सर्वशक्तिमान, सर्वलोकमहेश्वर, सर्वज्ञ भगवान तुम्हारे सुहृद हैं। वे अपनी पूर्ण महानता से नित्य तुम्हें महान बनाने को तैयार हैं। तुम उनकी कृपा पर विश्वास करो, उनकी शक्ति, सर्वज्ञता तथा सौहार्द पर विश्वास करो और पापों, विरोधी परिस्थितियों तथा कष्टों पर विजय प्राप्त कर सच्ची सुख-शांति और सफलता को प्राप्त करो।

– श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार

भगवत्प्रेम के शाश्वत रंग में रँगिये

[होली पूर्णिमा : २५ मार्च]

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

होलिका-दहन अर्थात् संवत्-जलाई यानी पुराना साल पूरा हो गया, जल गया। अब नये साल की नये सिरे से शुरुआत... यह बहुआयामी उत्सव जीव को न जाने किस-किस ढंग से उसके शारीरिक स्वास्थ्य, सामाजिक मेलजोल और आत्मस्वरूप की तरफ प्रोत्साहित करता है। होली खेलना अर्थात् भोगों के कच्चे रंगों को हटाकर जो पहले था, अभी है और मौत का बाप भी जिसे छीन नहीं सकता उस परमात्मा के ज्ञान के पक्के रंग में रँगना...

होली पर्व ऐहिक चीजों को पाकर श्रेष्ठता का अहं पोसने व सुखी होने की होड़ की अपेक्षा श्रेष्ठ-में-श्रेष्ठ उस परमात्मा में विश्रांति पाकर सुखमय होनेवाले प्रह्लाद की सच्चाई, भक्ति और प्रेम की विजय का पर्व है। प्रह्लाद अर्थात् जिसका चित्त अपने आत्मा के आनंद से आह्लादित है। प्रह्लाद की यह विशेषता थी कि कोई पदार्थ उसे कितना भी प्रिय हो, उसकी प्रशंसा सुनकर उसके चित्त में उसके प्रति आकर्षण नहीं होता था और कितनी भी ग्लानि, घृणा या किसीकी निंदा की बात सुनकर उसके चित्त में उसके लिए नफरत नहीं होती थी। 'मैं किसीके प्रति आकर्षण और किसीसे नफरत करके अपनी बुद्धि को, अपने हृदय को जो हृदयेश्वर का घर है, बिगाड़ने का काम क्यों करूँ ? मेरा हृदय तो हृदयेश्वर को प्रकट करने के लिए है।'- ऐसी मति थी प्रह्लाद की ! ...तो आप-हम प्रह्लाद की मति का अनुसरण करें।

एक बार देवसभा में प्रश्न उपस्थित हो जाने पर कि ''वर्तमान में सर्वगुणसंपन्न कौन है ?'' सभी देवता एक स्वर से बोले : ''प्रह्लाद... वह भले हमारे विरोधी दैत्यकुल का बालक है लेकिन सर्वगुणसंपन्न है।''

एक दिन प्रह्लाद को उसके गुरुकुल के दैत्य बालकों ने घेर लिया और पूछा : ''प्रह्लाद ! तुम अकेले बैठे रहते हो, तुम्हारे चेहरे पर कुछ विलक्षण भाव हैं और हमारे पूरे गुरुकुल में तुम्हारी आभा व योग्यता का बड़ा प्रताप है, इसका क्या कारण है ?''

प्रह्लाद ने कहा : ''यह जीवन दुर्लभ है और क्षणभंगुर भी है। वैरभाव और भोगों से बचकर परमात्मा के चिंतन व योग में लगना ही जीवन का सार है। इसीमें लगे रहने से मेरी आभा और योग्यता विकसित हुई है।''

तब दैत्य बालकों ने कहा : ''प्रह्लाद ! इस गुरुकुल में हम तुमसे पहले आये हैं लेकिन इतना बढ़िया ज्ञान जो हम तुमसे सुनते हैं, हमारे पास नहीं है। गुरु तो तुम्हारे भी षण्ड और अमर्क हैं, जो हमारे भी गुरु हैं तो क्या उनकी कृपा तुम पर है और हम पर नहीं है ? क्या तुम्हारे कोई दूसरे गुरुजी भी हैं ?''

प्रह्लाद ने कहा : ''शुक्राचार्यजी के पुत्र षण्ड और अमर्क तो राजधर्म, अर्थार्जन एवं कामनापूर्ति का उपदेश देते हैं, मुक्ति का उपदेश नहीं देते। मेरी मति तो सत् के, मुक्ति के उपदेश में स्थित है।

जब मैं अपनी माँ (कयाधू) के गर्भ में था तब देवर्षि नारदजी के उपदेश मुझे मिले। माँ की बुद्धि तो इन विचारों में बिखरी हुई थी कि मेरे पिता हिरण्यकशिपु तपस्या पूर्ण कर कब वापस आयेंगे ? तब तक राज्य का क्या होगा ? लेकिन मेरी बुद्धि तो नारदजी के सत्संग में बार-बार रम जाती थी। उन महापुरुष का उपदेश सुनकर मेरी बुद्धि में परमात्म-ज्ञान, परमात्म-निष्ठा प्रतिष्ठित हो गयी।''

''प्रह्लाद ! तुम संसार में रहकर भी इतने आनंदित और निर्भीक कैसे हो ?''

''जो मुझे राग के समय, द्वेष के समय अचल कर दे, भोग के रस से बचाकर योग के रस में टिका दे ऐसे सद्गुरु-ज्ञान से संपन्न मति के आश्रय से ही मैं निश्चिंत हूँ, निर्भीक हूँ, निर्द्वन्द्व और निरामय हूँ।

बालको! संसार का कोई भी सुख या दुःख सत्य और सार नहीं है। जब सुख-दुःख सब बदलनेवाला है तो उससे प्रभावित क्यों होना ? सब गुजरता जायेगा। पिताजी की डाँट या किसीके द्वारा किया गया प्रहार कब तक? जब तक ईश्वर शरीर को रखना चाहेंगे तब तक उसे कौन मार सकता है ? और जब ईश्वर शरीर की यात्रा पूरी कर देंगे तब कौन जी सकता है ?''

''प्रह्लाद! हमें तुम्हारे जैसा आनंद व निर्भयता कैसे प्राप्त होगी ?''

''भगवान प्राणिमात्र के परम सुहृद हैं। उनकी भक्ति ही मनुष्य को आनंद व निर्भयता प्रदान करती है। देवर्षि नारदजी का जो उपदेश मैंने सुना था, वह मुझे स्मरण है, मैं तुम लोगों को वह सुनाता हूँ। तुम उसका मनन करना ताकि तुम्हारा दिल भी प्रभु के रंग में रँग जाय। 'भगवान मेरे आत्मा हैं, पालक पिता हैं, रक्षक हैं, पोषक हैं, सर्वत्र हैं, सर्वव्यापक हैं और सबके आत्मस्वरूप हैं। वे कर्म के प्रेरक, नियामक (नियंत्रक) और कर्मफल के दाता हैं। वे सर्वेश्वर प्रभु हमारे हैं और हम उनके हैं।'- ऐसा चिंतन करोगे तो भगवान तुम्हारे मन को अपनी गोद में बिठा लेंगे।''

आप भी रोज अपने मन को भगवान की गोद में बिठाओ, फिर चाहे आपके इष्ट भगवान श्रीकृष्ण हों, भगवान श्रीराम हों, चाहे कोई और भगवान हों। मान लीजिये आपके इष्ट भगवान शिव या गुरुदेव हैं तो दस मिनट तक उनका ध्यान करो और धारणा करो कि वे ध्यान में बैठे हैं। वे शांत हैं, स्थिर तत्त्व में स्थित हैं। जितनी देर आप ऐसी धारणा करोगे, उतनी देर आप भी आसानी से स्थिर तत्त्व में स्थिति पाने लग जाओगे। यदि आपमें श्रद्धा है तो विद्वानों की यज्ञ और तप से जो शुद्धि होती है, बुद्धि पवित्र हो जाती है, वही शुद्धि और बुद्धि की पवित्रता आपको श्रद्धा से प्राप्त हो जायेगी।

दैत्य बालकों ने प्रह्लाद की बात पर श्रद्धा की और वैसा ही चिंतन करने लगे। षण्ड और अमर्क ने देखा कि 'प्रह्लाद के पिता दैत्यराज हिरण्यकशिपु भगवान श्रीहरि के विरोधी हैं और प्रह्लाद तो भगवान श्रीहरि का ही भजन करता है। गुरुकुल के सब बालक भी प्रह्लाद के पक्ष में हो गये हैं।'

उन्होंने दैत्यराज हिरण्यकशिपु से इस बात की शिकायत की। हिरण्यकशिपु कोपायमान हो उठा। उसने भक्तराज प्रह्लाद को बुलवाया और षण्ड-अमर्क से कहा कि ''तुम इसे दंड दो।''

षण्ड और अमर्क ने अपनी अभिचार विद्या के बल से एक कृत्या (राक्षसी) उत्पन्न की। लेकिन 'सर्वत्र हरि हैं।'- यह प्रह्लाद का दृढ़ भाव उसका सुदर्शन-चक्र अर्थात् रक्षा-कवच था। प्रह्लाद के इस सुदर्शन-चक्र से कृत्या घबरायी और षण्ड व अमर्क के ही पीछे लग गयी तथा उनका शिरोच्छेद कर दिया। भगवान श्रीहरि के सतत चिंतन में डूबा हुआ भक्तराज प्रह्लाद सुरक्षित रहा।

आपका रक्षक सुदर्शन-चक्र अर्थात् रक्षा-कवच मजबूत है तो आपके ऊपर कोई ईर्ष्या-द्वेष से कुछ फेंकता है तो वह घूम-फिरकर उसीके पास चला जाता है। भक्त को 'यह मेरा दुश्मन है... यह मेरा यह बिगाड़ देगा, वह बिगाड़ देगा...'- ऐसी चिंता नहीं करनी चाहिए। उसे सचेत रहना चाहिए, साथ ही रक्षा-कवच द्वारा मजबूत बने रहना चाहिए। भगवान, उनकी सत्ता और उनके नाम पर दृढ़ श्रद्धा बहुत रक्षा करती है।

मित्र और शत्रु के प्रभाव से अपने चित्त को प्रभावित न होने दो। मित्र और शत्रु की गहराई में जो परमात्मा है, उसकी स्मृति करो और जिसको उसकी स्मृति का रस प्राप्त होता है, उसके लिए बाहर के सब रस फीके हो जाते हैं।

दैत्य बालकों ने प्रह्लाद से पूछा : ''प्रह्लाद ! तुम्हारा इतना प्रभाव कैसे हो गया ?''

प्रह्लाद बोला : ''**अहं न पापं इच्छामि, न करोमि, न वदामि।** न मैं पापकर्म की इच्छा करता हूँ और न पापकर्म जैसा वचन बोलता हूँ। न मैं किसीकी बुराई चाहता हूँ, न बुरा करता हूँ, न किसीको बुरा बोलता हूँ। मैं हमेशा सच्चिंतन करता हूँ कि सबके हृदय में मेरे परमेश्वर हैं, मेरे अंतर्यामी हैं, मेरे विश्वेश्वर हैं, मेरे प्रभु हैं।''

आप भी ऐसा सच्चिंतन करो। प्रह्लाद के वचनों से लाभ उठाओ। सर्वकल्याण की भावना व परमेश्वर में दृढ़ निष्ठा रखने से जीवन में **(शेष पृष्ठ क्र. २९ पर)**

[होली पूर्णिमा : २५ मार्च]

प्राचीन वैज्ञानिक उत्सव : होली

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

होली का उत्सव वैदिक काल में भी मनाया जाता था । इस उत्सव पर ऊँची मति के लोग दान-पुण्य करते थे एवं छोटे लोग ढोल बजाकर दान-दक्षिणा प्राप्त कर उत्सव मना लेते थे । किंतु आज इस पवित्र उत्सव पर नशा करके एक-दूसरे को बीभत्स गालियाँ देकर, रासायनिक रंगों का प्रयोग करके इसका स्वरूप ही बिगाड़ दिया गया है । हमें उचित है कि इस अवसर पर प्रभु-गीत गायें और प्राकृतिक पुष्पों (टेसू के फूल आदि) का सात्त्विक रंग एक-दूसरे को लगायें, रस्सा-खींच, लकड़ी-खींच जैसे खेल खेलकर उमंग-उत्साह बढ़ायें । सात्त्विक रंग तन को तंदुरुस्ती देंगे, सात्त्विक खेल मन को प्रसन्नता देंगे और प्रभु के गीत हृदय को पवित्र करेंगे ।

गर्मी के दिनों में सूर्य की किरणें हमारी त्वचा पर सीधी पड़ती हैं, जिससे शरीर में गर्मी बढ़ती है । हो सकता है कि शरीर में गर्मी बढ़ने से गुस्सा बढ़ जाय, स्वभाव में खिन्नता आ जाय । इसीलिए होली के दिन प्राकृतिक पुष्पों का रंग बनाकर एक-दूसरे पर डाला जाता है, ताकि शरीर में गर्मी सहन करने की क्षमता बढ़ जाय और सूर्य की तीक्ष्ण किरणों का उस पर विकृत असर न पड़े ।

भारतीय संस्कृति के ये पावन त्यौहार एवं उनको मनाने के सात्त्विक तौर-तरीके केवल मन की प्रसन्नता ही नहीं बढ़ाते, तन की तंदुरुस्ती एवं बुद्धि में बुद्धिदाता की खबर भी देते हैं, ताकि मानव स्वस्थ, प्रसन्न एवं आनंदित रहे तथा परम आनंदस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति की ओर अग्रसर होकर सब दुःखों से मुक्ति और परमानंद की प्राप्तिस्वरूप मोक्ष को भी पा ले ।

'होली' भारतीय संस्कृति की पहचान का एक पुनीत पर्व है । यह पारस्परिक भेदभाव मिटाकर प्रेम व सद्भाव प्रकट करने का एक सुंदर अवसर है, अपने दुर्गुणों तथा कुसंस्कारों की आहुति देने का एक यज्ञ है तथा अंतर में छुपे हुए प्रभुत्व को, आनंद को, निरहंकारिता, सरलता और सहजता के सुख को उभारने का उत्सव है ।

यह रंगोत्सव अनेक विषमताओं के बीच भी समाज में एकत्व का संचार करता है व हमारे पूर्वजों की दूरदर्शिता का परिचय देता है । होली के रंग-बिरंगे रंगों की बौछारें जहाँ मन में एक सुखद अनुभूति प्रकट करती हैं, वहीं यदि सावधानी, संयम व विवेक न रखा जाय तो ये ही रंग दुःखदायी भी बन जाते हैं । अतः इस पर्व पर कुछ सावधानियाँ रखना भी अत्यंत जरूरी है ।

प्राचीन समय में लोग पलाश के फूलों से बने रंग अथवा गुलाल-कुमकुम-हल्दी से होली खेलते थे किंतु वर्तमान समय में रासायनिक तत्त्वों से बने रंगों का उपयोग किया जाता है । ये रंग त्वचा पर चकत्तों के रूप में जम जाते हैं । अतः ऐसे रंगों से बचना चाहिए । यदि किसीने आप पर ऐसा रंग लगा दिया हो तो तुरंत ही बेसन, आटा, दूध, हल्दी व तेल के मिश्रण से बना उबटन रँगे हुए अंगों पर लगाकर रंग को धो डालना चाहिए । यदि उबटन लगाने से पूर्व उस स्थान को नींबू से रगड़कर साफ कर लिया जाय तो रंग छूटने में और अधिक सुगमता होती है ।

होली खेलने से पहले अपने शरीर पर नारियल अथवा सरसों का तेल अच्छी तरह मल लेना चाहिए, ताकि शरीर पर रासायनिक रंगों का दुष्प्रभाव न पड़े और साबुन लगानेमात्र से रंग छूट जायें ।

मैं भी साथ चलूँगी...

[जानकी जयंती : ३ मार्च]

पतिव्रता नारियों में सीताजी का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है । स्त्री के शील और धैर्य की परीक्षा संकटकाल में ही होती है । सीताजी को अपने जीवन में जितने बड़े-बड़े संकटों का सामना करना पड़ा, उतने भारी संकट कदाचित् ही किसी स्त्री के जीवन में आये होंगे । अनेक विपत्तियों ने उनकी कठिन परीक्षा ली परंतु उनकी आँच में तपकर वे सदैव कुंदन की भाँति बाहर निकलीं । यही कारण है कि भारतीय देवियों में सती-शिरोमणि सीताजी का स्थान बहुत ही ऊँचा है ।

सीताजी का जीवन-चरित्र समस्त नारी-जाति के लिए प्रेरणास्रोत है । आज की आधुनिक नारियाँ उनके जीवन से प्रेरणा लेकर अपने पति के सुख-दुःख में सहभागी बनें ।

'श्रीरामचरितमानस' में भगवान श्रीरामजी के वनवास-गमन के प्रसंग में सीताजी के आदर्श सतीत्व और उनकी दृढ़ पतिव्रत-धर्मनिष्ठा का सुंदर वर्णन आता है ।

जब कैकेयी ने अपने पुत्र भरत को राजा बनाने के लोभ में दशरथजी को उन्हींके दिये वरदानों के जाल में फँसाकर भगवान श्रीरामचंद्र के लिए चौदह वर्ष का वनवास व भरत के लिए अयोध्या का सिंहासन माँग लिया, तब सीताजी भी श्रीरामजी के साथ वन जाने का आग्रह करने लगीं । श्रीरामजी ने वन में पड़नेवाले कष्टों का विवरण देते हुए सीताजी को अयोध्या अथवा मिथिला में रहने के लिए कहा ।

किंतु पतिव्रता सीताजी ने कहा :

प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान ।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान ॥

'हे प्राणनाथ ! हे दया के धाम ! हे सुंदर ! हे सुखों के दाता ! हे सुजान ! हे रघुकुलरूपी कुमुद को खिलानेवाले चंद्रमा ! आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिए नरक के समान है ।'

(श्रीरामचरित. अयो.कां. : ६४)

हे नाथ ! मैं आपके साथ वन में ही चलूँगी । मैं केवल आपके सुख की ही नहीं, दुःख की भी भागीदार हूँ । पति को दुःख और कष्ट झेलने के लिए छोड़ देनेवाली नारियाँ तो पतिव्रत की दृष्टि से कलंकिनी होती हैं । आपके पास रहकर मैं बड़े-से-बड़ा दुःख भी हँसते-हँसते झेल लूँगी ।

हे नाथ ! जहाँ तक स्नेही और नाते-रिश्तेदार हैं, पति के बिना स्त्री को सभी सूर्य से भी बढ़कर तपानेवाले लगते हैं । शरीर, धन, घर, पृथ्वी, नगर और राज्य - यह सब पति के बिना स्त्री के लिए शोक का समाज है । भोग रोग के समान हैं, गहने भाररूप हैं और संसार यम-यातना के समान है । हे प्राणनाथ ! आपके बिना जगत में मुझे कहीं कुछ भी सुखदायी नहीं दिखता ।

आपके साथ वन में रहते हुए पक्षी और पशु ही मेरे कुटुम्बी होंगे, वन ही नगर और वृक्षों की छाल ही निर्मल वस्त्र होंगे तथा पर्णकुटी ही स्वर्ग के समान सुखों का मूल होगी । उदार हृदय के वनदेवी और वनदेवता ही सास-ससुर के समान मेरी सँभाल करेंगे ।

हे दीनबंधु ! यदि इस अवधि (चौदह वर्ष) तक आप मुझे अयोध्या में रखते हैं तो जान लीजिये कि मेरे प्राण नहीं रहेंगे ।

ऐसा कहकर सीताजी बहुत ही व्याकुल हो गयीं । वियोग तो दूर रहा वे वियोग की बात तक सहन न कर सकीं और अत्यंत विकल हो उठीं ।

सीताजी की यह दशा देखकर श्रीरामजी ने जान लिया कि आग्रहपूर्वक इन्हें अयोध्या में रखने

से ये प्राणों को त्याग देंगी ।

जब राजा दशरथ, माता कौशल्या, माता सुमित्रा तथा स्वयं भगवान श्रीरामजी भी सीताजी को समझाते-समझाते थक गये परंतु सीताजी अपने निश्चय पर विनम्र भाव से अटल रहीं, तब अंत में भगवान श्रीरामचंद्रजी ने उन्हें अपने साथ आने की आज्ञा दे दी ।

कैसी पवित्र पतिव्रत-भावना थी माता सीताजी की ! राज्य के सुख-भोगों को त्यागकर उन्होंने श्रीरामजी के साथ चौदह वर्ष का वनवास सहर्ष स्वीकार कर लिया ।

सीताजी का जीवन-चरित्र समस्त नारी-जाति के लिए प्रेरणास्रोत है । आज की आधुनिक नारियाँ उनके जीवन से प्रेरणा लेकर अपने पति के सुख-दुःख में सहभागी बनें । अपने गृहस्थ-जीवन को विश्वास, सच्चाई, समझदारी, सद्भाव, सच्चरित्रता व पवित्रता से परिपूर्ण कर आनंदमय, माधुर्यमय एवं सुखमय बनायें ।

करुणासिंधु होते हैं महापुरुष

[श्री रामकृष्ण परमहंस जयंती : १२ मार्च]

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

आत्मानंद की मस्ती में ही सदैव रमण करनेवाले विमल विवेक के धनी महापुरुष संसार में कुछ-न-कुछ खूँटी लगाकर रखते हैं । वे सांसारिक लोगों की नाईं व्यवहार करते दिखते हैं और इच्छा न होते हुए भी इच्छा रखते हैं । 'यह करो', 'वह करो', 'ऐसा नहीं करो' कहकर आपके पीछे लगते हैं, आपसे चीज-वस्तु, प्रसाद लेते-देते हैं ताकि आपको उनकी कुछ कृपादृष्टि मिल जाय... उनके आत्मानुभव की कोई तरंग मिल जाय... आपका कुछ कल्याण हो जाय... नहीं तो आपके द्वारा चढ़ायी गयी नश्वर चीजें उनके किस काम की ?

विमल विवेक के धनी होने पर भी श्री रामकृष्ण परमहंस सत्संग करते हुए बीच-बीच में बार-बार रसोईघर में चक्कर लगाते और पत्नी शारदा देवी से पूछते : ''शारदा ! क्या बनाया है ? चटनी ! पुदीना डाला है ? इमली डाली है ? जल्दी कर ।'' ''अच्छा ! आज इडली बनायी है !'' ''अहा... डोसे ! अच्छा, और क्या बनाया है ?''

एक दिन... दो दिन... महीना... दो महीने... छः महीने बीते, तब आखिर वह सती-साध्वी शारदा देवी बोल पड़ीं कि ''आप इतने विवेकी, इतने महान संत और यह स्वाद लोलुपता - चटोरापन ! लोग

तो बोलते हैं कि आप परमहंस हैं और आप रसोई में आ-आकर पूछते हैं कि 'क्या बनाया है ?'... क्या बात है ?''

तब रामकृष्णजी ने बड़े गहरे अनुभव की बात, मार्मिक बात कही। वे बोले : ''शारदा ! मेरा जीवन माँ के अनुभव में (परमात्म-अनुभव में) भीतर से इतना सराबोर हो गया है कि मेरी नाव उस आनंदसिंधु की मझधार में कभी भी जा सकती है। फिर लोग उसमें कैसे बैठ पायेंगे ? इसलिए मैं कोई-न-कोई वासना उभारकर इस जीवन की नाव को संसार के किनारे बाँधे रखता हूँ, ताकि लोग आयें और पार हो जायें...

शारदा ! मैंने अपने मन को जो यह स्वाद में लगा रखा है, इससे जिस दिन अपनी खूँटी उखाड़ लूँगा, उस दिन यह नाव संसारियों को भवसागर से पार ले जाने के काबिल नहीं रहेगी, मैं उस परमात्म-आनंद के सिंधु में लीन हो जाऊँगा।''

ब्रहम गिआनी सदा निरलेप। जैसे जल महि कमल अलेप।
(सुखमनी साहिब)

एक दिन दोपहर को शारदा देवी रामकृष्णजी को प्रिय लगनेवाली वानगियों से युक्त भोजन थाल में सजाकर उनके पास पहुँचीं। भोजन को देखकर उस महापुरुष ने मुँह घुमा लिया। शारदा देवी को श्री रामकृष्ण के वचन याद आ गये और उनके हाथ से थाली गिर पड़ी कि 'अब खूँटी किनारे से उखड़ गयी है। यह नाव संसार से चल देगी...'

रामकृष्णजी ने मुँह घुमा लिया तो घुमा लिया। फिर स्वाद-वृत्ति की खूँटी कहाँ से लायें ? वह तो आत्मानंद के दरिया में डाल दी। श्री रामकृष्ण के वचन सत्य सिद्ध हुए। कुछ ही दिनों बाद वे महापुरुष ब्रह्म में लीन हो गये। अब उनकी यादें तो हैं लेकिन वह नाव नहीं है।

...तो ब्रह्मवेत्ता महापुरुष किसी छोटी-सी बात की खूँटी के सहारे अपनी शरीररूपी नाव को संसाररूपी किनारे पर लगाये रखते हैं, ताकि बैठनेवाला कोई रह न जाय। क्या नानकजी को किसी चीज की कमी थी जो वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहे ? क्या कुछ खाने-पीने के लिए घूमते रहे ? नहीं...

आत्मानंदमय जीवन की नाव में आप जैसों को बिठाने के लिए महापुरुष भटकान सहते हैं। श्री रामकृष्ण कहो, स्वामी विवेकानंद कहो, स्वामी रामतीर्थ कहो, स्वामी लीलाशाहजी बापू कहो, उस विमल विवेक को पाये हुए जो भी महापुरुष हैं, वे कुछ-न-कुछ खूँटी लगाकर रखते हैं ताकि लोगों के बीच उठने-बैठने के काबिल रहें। नहीं तो ऐसे पुरुष जिनका विमल विवेक जगा है, जो हाड़-मांस के शरीर को मैं नहीं मानते हैं, वे तो निर्लेप पद में पहुँचे होते हैं।

एक बार मेरे गुरुजी (स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज) और रमण महर्षि की आपस में मुलाकात हुई। रमण महर्षि गुरुजी से बोले : ''लीलाशाहजी ! आपकी इतनी ऊँची स्थिति है, फिर आप समाज में क्यों घूम रहे हैं ?''

गुरुजी बोले : ''जो आत्मसुख का खजाना मैंने पाया है, उसे मेरे भारतवासियों में बाँट सकूँ, इसलिए मैं घूम रहा हूँ।''

महापुरुषों के हृदय में हमारे लिए कितनी करुणा है ! अगर स्वामी लीलाशाहजी बापू नहीं घूमते तो आसुमल 'आसुमल' ही रह जाता, 'आसाराम' नहीं बन पाता। महापुरुषों का विमल विवेक कितना दिव्य है !

ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर, कार्य रहे ना शेष।
मोह कभी न ठग सके, इच्छा नहीं लवलेश॥

आत्मपद में विश्रांति पानेवाले, आत्मानंद के धनी उन महापुरुषों को उनकी अहेतुकी करुणा-कृपा के बदले में तुम क्या दे सकते हो ? तुम्हारे पास उनको देने के लिए है भी क्या ? आत्मधन की दृष्टि से तो तुम कंगाल हो और नश्वर को लात मारकर तो वे महापुरुष हुए हैं। तुम्हारे पास है भी क्या ? यह तन - जो हाड़-मांस, मल-मूत्र और विष्ठा से भरा है, यह मन - जिसमें काम-क्रोध, छल-कपट, बेईमानी, चापलूसी और खुशामदखोरी भरी है और वह धन - जिसको सँभालने की और आयकर भरने की चिंता हो जाय, यही तो तुम्हारे पास है, और है भी क्या ?

अरे ! वे महापुरुष तो शाश्वत पद में टिके हैं, आत्मस्वरूप में जगे हैं, अपने-आपमें तृप्त हैं। तुम उनको कुछ नहीं दे सकते क्योंकि वे स्वयं ब्रह्म हैं...

जैसी करनी वैसी भरनी

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥
(श्रीरामचरित. अयो. का. : २१८.२)

कर्म की अपनी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है क्योंकि वह जड़ है। कर्म को यह पता नहीं है कि 'मैं कर्म हूँ।' फिर भी यह देखा गया है कि कर्म की गति बड़ी गहन होती है। इसलिए मनुष्य अगर सावधान होकर सत्त्वगुण नहीं बढ़ाता है, अपितु जो मन में आया सो खा लिया, जो मन में आया सो कर लिया - इस तरह विषय-विकारों में तथा पापों और बुराइयों में जिंदगी बिता देता है तो उसे भयंकर नरकों में जाकर कष्ट भोगने पड़ते हैं और खूब दुःखद, नीच योनियों में जन्म लेना पड़ता है।
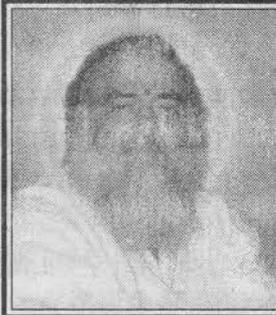
मनुष्य अगर सावधान होकर सत्त्वगुण नहीं बढ़ाता है, अपितु विषय-विकारों, पापों और बुराइयों में जिंदगी बिता देता है तो उसे भयंकर नरकों में जाकर कष्ट भोगने पड़ते हैं और खूब दुःखद, नीच योनियों में जन्म लेना पड़ता है।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥

'अज्ञान से मोहित रहनेवाले तथा अनेक प्रकार से भ्रमित चित्तवाले, मोहरूप जाल से समावृत और विषयभोगों में अत्यंत आसक्त आसुर लोग महान अपवित्र नरक में गिरते हैं।' **(श्रीमद्भगवद्गीता : १६.१६)**

कौशाम्बी राज्य के राजा विजयप्रताप और उनकी महारानी सुनंदा की पहली कुछ संतानें तो ठीक-ठाक थीं, लेकिन इस बार महारानी ने एक ऐसे बालक को जन्म दिया जो एक अंगविहीन मांसपिंड था।

रानी सुनंदा उसे देखकर घबरा गयी और उसने राजा को बुलवाकर बालक दिखाया।

राजा ने कहा : ''सुनंदा ! तेरी कोख से यह मांसपिंड जैसा बालक पैदा हुआ है, फिर भी कैसे भी करके हमें इसका पालन-पोषण तो करना ही होगा।''

बालक का नाम मकराक्ष रखा गया और उसे तलघर में छुपा दिया गया तथा दाई से कहा गया : ''खबरदार ! हम तीनों के सिवाय यह बात किसीको भी पता न चले कि हमारे यहाँ ऐसा बालक पैदा हुआ है।''

सुनंदा अपने भाग्य को कोसती हुई उस बालक का पालन-पोषण करने लगी।

कुछ समय बीतने पर कौशाम्बी नगर के राजोद्यान में तीर्थंकर महावीर स्वामी का आगमन हुआ। सारे नगर में यह खबर फैल गयी। बड़ी संख्या में लोग उनका सत्संग सुनने के लिए राजोद्यान की ओर आने लगे।

खूब चहल-पहल महसूस कर एक वृद्ध सूरदास (अंध व्यक्ति) ने लोगों से पूछा : ''क्या आज राजा का जन्मदिन है या फिर कोई त्यौहार या उत्सव है, जिसके कारण नगर में इतनी चहल-पहल हो रही है ?''

उनमें से किसी युवक ने कहा : ''न तो राजा का जन्मदिन है और न ही कोई त्यौहार या उत्सव है, बल्कि आज नगर में महावीर स्वामी आये हैं। लोग उनके दर्शन-सत्संग के लिए राजोद्यान की ओर जा रहे हैं।''

वृद्ध सूरदास ने कहा : ''मुझे भी संत के द्वार ले चलो।''

युवक ने कहा : ''आँखों से तो तुम्हें दिखायी

नहीं देता और कानों से कम सुनायी पड़ता है, फिर वहाँ जाकर क्या करोगे ?''

''मैं संत को नहीं देख सकूँगा लेकिन उनकी दृष्टि तो मुझ पर पडेगी जिससे मेरे पाप मिटेंगे। कानों से उनका सत्संग भी नहीं सुन सकूँगा लेकिन वहाँ के सात्त्विक वातावरण का लाभ तो मुझे मिलेगा।''

युवक के हृदय में सज्जनता का संचार हुआ और उसने उस अंधे वृद्ध को ले जाकर सत्संग-स्थल पर एक ऐसी जगह बिठा दिया, जहाँ महावीर स्वामी की दृष्टि पड़ सके।

जब महावीर स्वामी सत्संग कर रहे थे तब उनके पट्टशिष्य गौतम स्वामी, जो हमेशा महावीर स्वामी को एकटक देखते हुए ध्यानपूर्वक उनका सत्संग सुना करते थे, बार-बार उस अंधे वृद्ध को ही देख रहे थे।

महावीर स्वामी को आश्चर्य हुआ कि 'मेरी तरफ एकटक देखनेवाला गौतम आज बार-बार मुड़कर क्या देख रहा है ?'

महावीर स्वामी को आश्चर्य हुआ कि 'मेरी तरफ एकटक देखनेवाला गौतम आज बार-बार मुड़कर क्या देख रहा है ?'

जब सत्संग पूरा हुआ तब महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी से पूछा : ''आज सत्संग के दौरान तुमने ऐसा क्या देखा जो तुम सत्संग से विमुख हो गये ?''

''भंते ! सत्संग में आये एक वृद्ध की ऐसी विचित्र स्थिति थी कि आँखों से तो वह अंधा था, उसके शरीर पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं और उससे भयंकर बदबू भी आ रही थी। बदबू के कारण कोई भी व्यक्ति उसके नजदीक नहीं बैठता था। वह कितना अभागा व दुःखी प्राणी है ! भंते ! उससे भी ज्यादा दुःखी कोई हो सकता है ?''

''हाँ, उस अंधे वृद्ध का तो कुछ पुण्य है। आँखों के सिवाय उसके शरीर के बाकी अंग ठीक हैं और वह चल-फिर भी सकता है। लेकिन राजा विजयप्रताप का बालक मकराक्ष तो बिना हाथ-पैर के मांस के पिंड जैसा है और उसका पालन-पोषण तलघर में हो रहा है। इस बात को केवल राजा-रानी व एक दाई ही जानती है।''

''भंते ! अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं राजमहल में जाकर उसे देख आऊँ।''

महावीर स्वामी ने अनुमति दे दी।

जब गौतम स्वामी राजमहल में पहुँचे तो राजा विजयप्रताप व रानी सुनंदा चकित रह गये और सोचने लगे : 'यह भिक्षा का समय नहीं है और भिक्षापात्र भी इनके हाथ में नहीं है, फिर भी महावीर स्वामी के ये पट्टशिष्य हमारे राजमहल में आये हैं !'

राजा ने गौतम स्वामी का आदर-सत्कार किया और बोले : ''आपके यहाँ पधारने से यह राजमहल पवित्र हो गया है। हम आपकी क्या सेवा करें ? हमें आज्ञा दीजिये।''

गौतम स्वामी ने पूछा : ''राजन् ! क्या आपके राजमहल में ऐसा भी कोई जीव है, जिसका पालन-पोषण तलघर में ही हो रहा है और वह अंगविहीन मांसपिंड जैसा है ?''

गौतम स्वामी का प्रश्न सुनकर राजा-रानी चकित हो गये। राजा ने उनसे पूछा : ''इस बात को हम दोनों व एक दाई के सिवाय कोई नहीं जानता, फिर आपको यह सब कैसे पता चला ?''

''राजन् ! मुझे यह सब महावीर स्वामी ने बताया है और मैं यहाँ मकराक्ष को देखने के लिए ही आया हूँ।''

रानी ने कहा : ''भोजन का समय हुआ है, मकराक्ष को भूख लगी होगी। मैं उसे भोजन कराने जाने ही वाली थी लेकिन आपके आने की सूचना पाकर रुक गयी। चलिये, मैं आपको उसके पास ले चलती हूँ।''

वहाँ जाने से पहले रानी ने मुँह को वस्त्र से ढका और गौतम स्वामी को भी वैसा ही करने के लिए कहा, क्योंकि जिस तलघर में मकराक्ष को रखा हुआ था वहाँ से ऐसी भयंकर बदबू आती थी कि खड़े रहना भी मुश्किल हो जाता था।

वहाँ पहुँचकर गौतम स्वामी ने देखा कि भूख के

कारण लार टपकाता हुआ कोई मांसपिंड हिल रहा है।

जैसे ही रानी ने उसके मुँह में भोजन के कौर डालने शुरू किये, वह लपक-लपककर खाने लगा। भोजन पूरा होते ही उस मांसपिंड में से रक्त, मवाद और विष्ठा निकलने लगी। गौतम स्वामी यह सब देखकर विस्मित हो गये।

राजमहल से वापस आने के बाद वे नहा-धोकर महावीर स्वामी के पास गये और पूछा : ''भंते! उस अभागे जीव ने ऐसा कौन-सा कर्म किया होगा जो कौशाम्बी के राजमहल में जन्म लेकर भी ऐसी हालत में जी रहा है?''

''गौतम! वह पूर्वजन्म में इसी भरतक्षेत्र के सुकर्णपुर नगर का स्वामी था और अन्य पाँच सौ ग्राम भी उसके अधीन थे। तब उसका नाम इक्काई था।

वह अविद्यमान संसार को सत्य मानकर धन के लोभ में इतना नीचे गिर गया था कि लूटमार व अपहरण करके प्रजा का शोषण करता था। अपनी स्त्री होते हुए भी परायी स्त्रियों पर नजर रखता था। साधु-संतों का अपमान व सत्संग का अनादर करता था।

पूर्वजन्म के अपने इन नीच कर्मों के फलस्वरूप ही वह अंगविहीन मांसपिंड के रूप में जन्मा है और राजघराने में जन्म लेने के बावजूद राजसी सुखों से वंचित हो भयंकर कष्टों का संताप सहन कर रहा है।''

इसलिए कर्म करने में सावधान रहना चाहिए। मनुष्य-जन्म एक चौराहे के समान है। यहीं से सारे रास्ते निकलते हैं। चाहे आप अपने जीवन में ऐसे घृणित कर्म करो कि ब्रह्मराक्षस बन जाओ... आपके हाथ की बात है या फिर जप, ध्यान, भजन, सत्कर्म, संतों का संग आदि करके ब्रह्मज्ञान पाकर मुक्त हो जाओ... यह भी आपके ही हाथ की बात है। ब्रह्मज्ञान पाने के बाद कोई कर्म आपको बाँध नहीं सकेगा।

महत्त्वपूर्ण निवेदन

सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १४९वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया मार्च २००५ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

बुद्धि को सत्य-पक्षपातिनी बनायें

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

एक होती है सत्य-पक्षपातिनी बुद्धि और दूसरी होती है सुख-पक्षपातिनी बुद्धि। कभी हम जानते हैं कि अमुक कार्य बुरा है लेकिन सुख का पक्ष लेकर उसे कर बैठते हैं क्योंकि बुद्धि में सुख का लालच होता है। आप भला-बुरा जानते नहीं हैं या आपमें अक्ल नहीं है, ऐसी बात नहीं है लेकिन जब बुद्धि सुख का पक्ष लेती है तो आप बेईमानी करते हैं और बेईमानी के फलस्वरूप आपकी आंतरिक योग्यता, आंतरिक सुख, आंतरिक सामर्थ्य कुंठित हो जाता है। इस प्रकार जब हम लोभ, मोह या अहंकार में आकर बेईमानी करते हैं तो अपनी सहजता, सरलता, सज्जनता और महानता से नीचे आ जाते हैं।

सत्य-पक्षपातिनी बुद्धि हमारे पास ही रहती है। जब हम गलत करते हैं तो अंतरात्मा की चेतना का एक हिस्सा बुद्धि को प्रभावित करता है और हमें लगता है कि यह गलत है, ठीक नहीं है, झूठ है, अन्याय है। उस समय हमारे चेहरे पर वह निर्भीकता, वह प्रसन्नता, वह बल नहीं होता जो सत्य पर अडिग रहने से प्राप्त होता है। दिखावटी बल भले आ जाय, दिखावटी निर्भीकता भले आ जाय जैसे गुंडों में आ जाती है। जब तक जीव दुःखहारी श्रीहरि की शरण नहीं जाता, तब तक उसके दुःखों का अंत नहीं होता। धन, सत्ता, बेईमानी व सुख की शरण तो हम लोग गये, सुखी होने के लिए सब कुछ कर रहे हैं लेकिन हम दुःखी ही रहे। निश्चिंत होने के लिए हमने सब कुछ किया लेकिन अपने को चिंतित पाया। कौन सोचता है कि 'मैं भयभीत रहूँ' लेकिन फिर भी 'कहीं यह न हो जाय, वह न हो जाय...' यह चिंता सताती रहती है। न जाने कितने-कितने पाप, कितने-कितने

कपट और कितनी-कितनी बेईमानी करने के बाद भी हम निश्चिंतता, निर्भीकता और सुख से दूर चले गये, क्योंकि सुखस्वरूप है हमारा आत्मा और आत्मा है सत्य। जो सत्य है वह चैतन्यस्वरूप भी है और आनंदस्वरूप भी।

हमको आनंद और सुख चाहिए लेकिन हम असत्, जड़ और दुःखरूप संसार में सुख खोजने की बेवकूफी करते जा रहे हैं। हम यह तब तक करते रहेंगे जब तक भगवत्प्रेम और भगवद्ज्ञान का सदुपयोग नहीं करते।

यह हम सबका अनुभव है कि जो हम चाहते हैं वह सब कुछ होता नहीं और जो होता है वह सब भाता नहीं और जो भाता है वह टिकता नहीं, क्योंकि प्रकृति परिवर्तनशील है जिससे उसकी वस्तुओं में परिवर्तन होता ही रहता है। ...तो आप सदा टिकनेवाला सुख चाहते हैं क्योंकि आप सदा हैं। शरीर सदा नहीं है, परिस्थितियाँ सदा नहीं हैं। आप जन्म से पहले भी थे और मरने के बाद भी रहेंगे... तो आप अमर हैं। जब तक आपको शाश्वत सुख, अमिट रस नहीं मिलता, तब तक कई बार आपके जीवन में मिटनेवाले रस आ जायें, जैसे - भोजन का रस लिया, शादी का रस लिया, बेटे-बेटी-परिवार का रस लिया तो भी आप रीते-के-रीते, नीरस-के-नीरस रह जाते हैं।

आपकी बुद्धि की दो धाराएँ हैं - एक सत्य की पुजारिन है और दूसरी सुख की। अगर आपकी बुद्धि को सच्चा सुख नहीं मिला तो वह सत्य की पूजा छोड़कर हलके सुख और असत्य का आसरा लेगी।

स्वामी रामतीर्थ ने सुंदर कहा है :

जिन प्रेम रस चाख्या नहीं, अमृत पिया तो क्या हुआ।

स्वर्ग तक पहुँच गये, अमृत पा लिया लेकिन अंत में फिर गिरना पड़ा। यदि जीवात्मा ने उस परमात्मा का प्रेम-रस नहीं चखा तो फिर स्वर्ग का अमृत पी लिया तो भी क्या हुआ ?

जिन इश्क में सिर ना दिया, जुग जुग जिया तो क्या हुआ॥

यदि ईश्वर के इश्क में अपना अहं नहीं दिया तो जुग-जुग जीकर क्या झख मारा ?

मशहूर हुआ पंथ में, साबित न किया आपको।

अपनी जाति अथवा अपने पंथ या मजहब में मशहूर हो गये लेकिन 'मैं क्या हूँ ?' यह तो जाना नहीं। शरीर के नाम को अपना नाम मानकर बेवकूफ बनते गये और क्या किया ?

आलिम व फाजिल होय के, दाना हुआ तो क्या हुआ॥
औरों नसीहत है करे, और खुद अमल करता नहीं।
दिल का कुफर टूटा नहीं, हाजी हुआ तो क्या हुआ॥

विद्वान, स्नातक होकर चतुर हो गये लेकिन हृदय की कृतघ्नता, अज्ञानता नहीं मिटी क्योंकि दूसरों को तो सदुपदेश देते रहे लेकिन खुद अमल नहीं किया। सुख का पक्ष लेते-लेते, बेईमानी का पक्ष लेते-लेते अंतरात्मा के रस, उसके ज्ञान एवं उसकी प्रेरणा से अपने को दूर करते चले गये। लेकिन अंतरात्मा सत्य-पक्षपाती है। मान लो आपके बेटे ने गलती की और वह उस मामले में फँस गया। आपने उसको छुड़ाने की कोशिश की, फिर भी वह सजा का पात्र ठहराया गया तो आपका हृदय बोलेगा : 'भाई ! क्या करें, आखिर गलती तो थी ही।' और छूट भी गया तो भी आप उसे बोलेंगे : ''बेटा! तुम्हारी गलती तो थी।'' तो आपकी बुद्धि की दो धाराएँ हैं - एक सत्य की पुजारिन है और दूसरी सुख की। अगर आपकी बुद्धि को सच्चा सुख नहीं मिला तो वह सत्य की पूजा छोड़कर हलके सुख और असत्य का आसरा लेगी। मैं ऐसे कई अक्लवालों को जानता हूँ जिन्होंने सत्य का आश्रय न लेकर कपट का आश्रय लिया, बेईमानी का आश्रय लिया और उनका सारा जीवन खोखला हो गया। यदि किसीमें कुछ सद्गुण हैं लेकिन उसे सत्य-रस का सहारा नहीं मिला तो 'धन पाकर सुखी होऊँ... नाम कमाकर सुखी होऊँ... इतना पैसा देश में और इतना परदेश में रखकर सुखी होऊँ...' यह असत्य का आश्रय बना रहेगा। खुद चेतन होकर भी जड़ रुपयों से सुख चाहेगा। खुद शाश्वत होकर भी नश्वर सुख की परिस्थितियाँ पैदा करके सुखी होना चाहेगा, बेचारा धोखा खायेगा।

देखी गुलिस्ताँ बोस्ताँ, मतलब न पाया शैख का।

'गुलिस्ताँ बोस्ताँ' ग्रंथ तो पढ़ लिया लेकिन

उसके माध्यम से शैख सादी (उसके रचयिता) जो गूढ़ बात कहना चाहते हैं, उसका मर्म न जाना तो क्या फायदा ? अपने चित्त में ईश्वरीय रस नहीं पाया तो क्या फायदा ?

सारी किताबाँ याद कर, हाफिज हुआ तो क्या हुआ ॥

यदि किसीने सारी किताबें रट डालीं, कुरान की आयतें रट डालीं, वेद की ऋचाएँ कंठस्थ कर लीं, लेकिन उस अंतरात्मा का रस नहीं पाया तो फिर वह गिड़गिड़ायेगा, धोखा करेगा।

जब तक पियाला प्रेम का, पीकर मगन होता नहीं।
तार मंडल बाजते, जाहिर सुना तो क्या हुआ ॥
जब प्रेम के दरियाव में, गरकाब यह होता नहीं।
गंगो-जमन गोदावरी, न्हाता फिरा तो क्या हुआ ॥
प्रीतम से किंचित् प्रेम ना, प्रीतम पुकारत दिन गया।

प्रभु-प्रेम की मदिरा पीकर उसमें मग्न नहीं हुए, समस्त ब्रह्मांडों में व्याप रहे परमात्मा की आवाज - अनहद नाद नहीं सुना अपितु आहत नाद (आघात या टकराव से पैदा होनेवाले नाद) सुनते रहे तो क्या बड़ी बात हुई ? प्रभु-प्रेम के समुद्र में डूबे नहीं और गंगा, यमुना, गोदावरी आदि में ही नहाते फिरे तो कौन-सा बड़ा कार्य किया ? यदि प्रभु से प्रेम नहीं है और 'प्रभु ! प्रभु !' पुकारते रहे तो क्या हासिल होगा ?

मतलूब हासिल ना हुआ, रो रो मुआ तो क्या हुआ ॥

यदि आपने रोते-रोते जीवन पूरा कर दिया लेकिन इच्छित वस्तु (वास्तविक रस, परम शांति) नहीं पायी तो जीवन में क्या हासिल किया ? आपका जीवन रस चाहता है, क्योंकि वह रसस्वरूप ईश्वर से प्रकट हुआ है। जब तक आपको सच्चा रस नहीं मिलता, तब तक आपकी बुद्धि नकली रस, नकली सुख का पक्ष लेगी और आप जन्म-मरण के चक्कर में घूमते रहेंगे। इसलिए बुद्धि को बाह्य सुख-पक्षपातिनी न बनाकर सत्य-पक्षपातिनी बनाइये।

बेईमानी और असत् का आसरा लेने से हमारी भक्ति में जो बरकत आनी चाहिए, वह नहीं आती। हमारे ज्ञान में जो बल आना चाहिए, वह नहीं आता। हमारी वाणी में जो बल आना चाहिए, वह नहीं आता।

...तो सुख का लालच मिटाकर बुद्धि को सत्य-पक्षपातिनी कैसे बनायें ?

अपनी बुद्धि को सत्य-पक्षपातिनी बनाने हेतु हमें किसी-न-किसी व्रत, नियम-धर्म की आवश्यकता पड़ती है।

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।

जो दूसरों का दुःख नहीं हरता, उसका अपना दुःख नहीं मिटता और जो दूसरों का दुःख हरने में लग जाता है, उसका अपना दुःख टिकता नहीं। जिसको सुख का लालच है, वह दूसरों का दुःख हरने में लग जाय। सुख का लालच मिटते ही उसे सच्चा सुख, स्वास्थ्य और धर्म का रस मिलने लगेगा। जैसे आप पाप का फल नहीं चाहते, फिर भी वह आपको पकड़ लेता है, ऐसे ही आप परोपकार करो, दूसरों की भलाई करो और उसका फल नहीं चाहो तो भी वह आपको प्राप्त होगा ही। इससे आपकी ही भलाई होती है। आप जो कुछ करते हैं, घूम-फिरकर आपके पास ही आता है।

सेवा से धर्म होता है और जो धर्माचरण करता है उसके द्वारा जल्दी-से अधर्म के काम नहीं होते। लेकिन कोई सोचता है कि 'इतनी सेवा करें तो लोग क्या दे देंगे ?' अरे ! यदि सेवा करके दूसरों का दुःख हरेगा तो अपना दुःख टिकेगा नहीं और सेवा नहीं करेगा, स्वयं सुख भोगेगा तो अपना वह सुख टिकेगा नहीं। फिर दुःख-ही-दुःख रहेगा, स्वार्थ-ही-स्वार्थ रहेगा। जो जितना ज्यादा स्वार्थी है, वह उतना ही ज्यादा बीमार रहेगा, उतना ही दुःखी रहेगा। जो जितना परोपकारी है, वह उतना ही नीरोग रहेगा, सुखी रहेगा। सेवा के बिना आपका जीवन आपके लिए और समाज के लिए बोझ हो जायेगा, आपकी पराधीनता नहीं मिटेगी।

पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं।

देश बदलता रहता है, समय बदलता रहता है, परिस्थितियाँ और नियम बदलते रहते हैं। अबदल एक परमेश्वर है। उसे पाये बिना कितना भी फैशन बदलो, कितने भी मकान बदलो, कितने भी नियम बदलो लेकिन दुःखों का अंत होनेवाला नहीं। दुःखों का अंत होता है बुद्धि को बदलने से। जो बुद्धि शरीर को मैं मानती है और संसार में सुख ढूँढ़ती है, उसी बुद्धि को परमात्मा को मेरा मानने में और परमात्म-सुख लेने में लगाओ तो आनंद-ही-आनंद है, माधुर्य-ही-माधुर्य है...

चलती गाड़ी को रोक दिया

[ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज का प्राकट्य-दिवस : ४ अप्रैल]

❋ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❋

कच्छ (गुजरात) में आदिपुर के पास गोपालपुरी स्टेशन है। वहाँ किसी रेलवे अधिकारी के यहाँ गुरु महाराज स्वामी श्री लीलाशाहजी बापू पधारे हुए थे। स्वामीजी के आदिपुर वापस लौटने के लिए कार लाने में भक्त को थोड़ी देर हुई। अत्यंत सादगी से रहनेवाले स्वामीजी को पैदल चलना ही अधिक पसंद था। स्वामीजी ने उस अधिकारी से कहा : ''आदिपुर यहाँ से ३-४ मील ही दूर है न ? चलो, हम चलते-चलते ही वहाँ पहुँच जायें।''

इतने में उन्होंने देखा कि गोपालपुरी स्टेशन से सीटी बजाकर कोई रेलगाड़ी चल पड़ी है। स्वामीजी ने पूछा : ''वह गाड़ी कहाँ जायेगी ?''

उस अफसर ने जवाब दिया : ''वह गाड़ी आदिपुर जायेगी, अपने आश्रम के पास ही।''

''तो फिर चलो, उसमें ही बैठ जायें।''

''परंतु साँईं ! उसे तो सिग्नल भी मिल गया है और उसने प्लेटफार्म भी छोड़ दिया है।''

''तो इसमें क्या हुआ ? हमको तो अभी दिख रही है न ? और तू तो रेलवे का अफसर है, उसे कह कि खड़ी रहे।''

''बाबा ! मैं यहाँ बोलूँ तो इंजन कहाँ सुननेवाला है ?''

''अरे ! तू बात काटता है ? मेरी बात तो मान। उसे कह : रुक जा... रुक जा...''

अफसर ने दूर जाती गाड़ी को संबोधित करके कहा : ''ऐ गाड़ी ! रुक जा... गाड़ी ! रुक जा... साँईं कहते हैं : रुक जा...''

क्या पता क्या हुआ, गाड़ी रुक गयी। ड्राइवर ने लाख प्रयत्न किये किंतु गाड़ी नहीं चली। स्वामीजी और वह अफसर प्रथम श्रेणी के डिब्बे में जा बैठे। वह अफसर बेचारा स्वामीजी के आगे आदर एवं अहोभाव से झुक पड़ा और बोला : ''साँईं ! आपकी लीला न्यारी है।''

''अरे ! तू टिकट तो ले आ।''

''स्वामीजी ! टिकट की कोई जरूरत नहीं है।''

''तुझे कोई जरूरत नहीं है, तू तो रेलवे का अफसर है लेकिन मैं थोड़े ही हूँ। जा, टिकट ले आ।''

''परंतु साँईं ! मैं टिकट लेने जाऊँ और गाड़ी चल पड़े तो ?''

''अरे ! तू फिर बात काटता है ? जा, टिकट लेकर आ।''

वह अफसर टिकट लेने गया। टिकट लेकर पुनः आकर बैठ गया। तब स्वामीजी ने कहा :

''अरे ! ऐसे कैसे बैठ गया है ? तूने गाड़ी को रोका है तो अब ब्रेक खोल डाल। तूने इसे खड़ी रहने के लिए कहा था न ? अब इसे चलने की आज्ञा दे। वहाँ बेचारा ड्राइवर परेशान हो रहा होगा कि गाड़ी क्यों नहीं चलती ? क्या कारण होगा ? देख, लोग भी सब नीचे उतर रहे हैं। ले यह कमंडल। इसमें से पानी लेकर इंजन पर छींटे मार और बोल : ''चल माई ! चल।'' फिर यह चलेगी। गाड़ी के ड्राइवर को भी कहना कि गाड़ी बिगड़ी नहीं है।''

...और हुआ भी ऐसा ही। अफसर ने स्वामीजी के कथनानुसार किया और गाड़ी चलने लगी।

आप लोग इस बात को बहुत बड़ी मानते हो परंतु मेरे गुरुदेव इस बात को जरा भी बड़ी नहीं मानते थे। मैं भी इसे बड़ी नहीं मानता। मैं जब साधना करता था, तब भी ऐसे चमत्कार होते ही रहते थे। ऐसे चमत्कार होना कोई बड़ी बात नहीं है। सबसे बड़ी बात है ब्रह्मविद्या की प्राप्ति, सबसे बड़ी बात है आत्मसाक्षात्कार। उसे सिद्ध कर लेने के बाद, प्राप्त कर लेने के बाद फिर यह सब मदारी के खेल जैसा लगता है, हालाँकि यह आध्यात्मिक, यौगिक सत्यसंकल्प-बल है। यदि योगी अपने प्राणों को सूक्ष्मातिसूक्ष्म कर लें तो वे सूर्य, चंद्र, ग्रह एवं नक्षत्रों को गेंद की तरह अपनी जगह से खिसकाकर, अपनी इच्छा के अनुसार चला सकते हैं। स्वामी विवेकानंदजी ने 'योगविषयक प्रवचन' में जो योग-सामर्थ्य की बात कही है, वह सत्य है। योगी के स्मरण करनेमात्र से देवता भी उनके आगे हाथ जोड़कर खड़े हो जायें, ऐसा उन पूर्ण योगियों का सामर्थ्य होता है।

गृहस्थ का धर्म

* ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज *

गृहस्थ आश्रम खराब नहीं है, वह भी अच्छा है। वह एक वृक्ष के तने की भाँति है और उस वृक्ष की जड़ है ब्रह्मचर्य आश्रम तथा उसके फल-फूल हैं वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम। नयी पाठशालाएँ, अनाथाश्रम आदि खोलना अथवा संत-महात्माओं की सेवा के कार्य आदि जो भी पुण्यकर्म होते हैं, वे सब गृहस्थियों से ही होते हैं। ये सभी काम धन से ही होते हैं। धन कोई ऊपर से, आकाश से नहीं आता, बल्कि खेती, व्यापार आदि से ही प्राप्त किया जाता है।

धन कमाना आवश्यक है, किंतु वह सच्चाई से ही कमाना चाहिए। सेर बताकर छटाँक कम नहीं देना चाहिए। हृदय में किसीके लिए भी द्वेष, कपट अथवा ठगने की भावना नहीं रखनी चाहिए। व्यापार में लाभ तो अवश्य ही कमाना है, किंतु जब कोई ग्राहक आये, तब समझना चाहिए कि उस रूप में स्वयं भगवान आये हैं और उससे ठगी अथवा छल करना भगवान के साथ ठगी अथवा छल करना है।

रामनाम बोलने से लाभ तो होता है लेकिन साथ में वाणी और कर्म में सच्चाई हो तो अमिट लाभ होता है। नाम-जप के साथ पेशे (व्यवसाय) तथा व्यवहार में भी सच्चाई होगी तो सोने पे सुहागा। गृहस्थ को धन कमाने में बहुत समय व्यतीत करना पड़ता है, इसलिए वह सच्चे दिल से थोड़ा समय भी भजन करेगा तो भगवान स्वीकार कर लेंगे।

पहले के लोग भी खाते-पीते थे, मिठास और खटास का अनुभव करते थे, परंतु वे अपना जीवन सादगी से बिताते थे तथा मन व इन्द्रियों को वश में रखते थे। वे शास्त्र व संत-सम्मत व्यवहार करते थे। आज के लोगों को उनका अनुकरण करना चाहिए। प्रतिदिन प्रातः-सायं भगवान का स्मरण करना चाहिए। अपने में से कमजोरियों को निकालने के लिए भगवान को प्रार्थना करें कि 'हे प्रभु ! हमें शुभ बुद्धि दो, शक्ति दो, हम अपने कर्तव्य का पालन करें।' जितना हो सके, उतना बुरे संग और बुरे कर्मों से बचना चाहिए। जो ऐसा करता है, वह अवश्य मोक्षपद प्राप्त करेगा।

कोई सरकार की प्रशंसा भले ही न करे, परंतु यदि चोरी, जुआ आदि कुकर्मों से बचा रहेगा तो उसे जेल नहीं जाना पड़ेगा। यही बात ईश्वर के सम्बंध में भी है। भगवान न्यायकारी हैं और सब कुछ देखते हैं। हम भले ही उनकी प्रशंसा करें, किंतु यदि हम अपराध करेंगे तो उसका दंड हमें अवश्य भोगना पड़ेगा। इसलिए कुकर्मों से अवश्य बचना चाहिए। झूठ मत बोलो तथा ऐसा कोई काम न करो, जिसको करने से लज्जा आये। सदैव भलाई के काम करते रहो। दूसरों को शुभ कर्म करने के लिए साहस दो। यह भी भलाई का कार्य है। **कर भला तो हो भला।** भगवान तुम्हें शक्ति दें ताकि तुम शुभ कर्म करते रहो।

गृहस्थ को धन कमाने में बहुत समय व्यतीत करना पड़ता है, इसलिए वह सच्चे दिल से थोड़ा समय भी भजन करेगा तो भगवान स्वीकार कर लेंगे।

संसार को स्वप्नवत् समझो। यह सब परमात्मा का खेल है। संसार उसीका नाम है, जिसे हम देखते हैं। संसार गुलाब का फूल नहीं, काँटा है। यदि भगवान को भुलाकर स्वच्छंद होकर चलोगे यानी बुरा संग, बुरे संकल्प, बुरे कर्म करोगे तो वह चुभेगा अर्थात् तुम्हें दुःखी बनायेगा, किंतु यदि देह, मन तथा इन्द्रियों पर संयम रखोगे और भगवान का स्मरण करोगे तो सच्चा आनंद प्राप्त करोगे।

ॐ... ॐ... ॐ...

मनुष्यमात्र को क्या करना चाहिए ?

(गतांक से आगे)

श्री शुकदेवजी कहते हैं : परीक्षित ! यदि योगी की इच्छा हो कि मैं ब्रह्मलोक में जाऊँ, आठों सिद्धियाँ प्राप्त करके आकाशचारी सिद्धों के साथ विहार करूँ अथवा त्रिगुणमय ब्रह्मांड के किसी भी प्रदेश में विचरण करूँ तो उसे मन और इन्द्रियों को साथ लेकर ही शरीर से निकलना चाहिए । योगियों का शरीर वायु की भाँति सूक्ष्म होता है । उपासना, तपस्या, योग और ज्ञान का सेवन करनेवाले योगियों को त्रिलोकी के बाहर और भीतर सर्वत्र स्वच्छंदरूप से विचरण करने का अधिकार होता है । केवल कर्मों के द्वारा इस प्रकार बेरोकटोक विचरना नहीं हो सकता । परीक्षित ! योगी ज्योतिर्मय मार्ग सुषुम्ना के द्वारा जब ब्रह्मलोक के लिए प्रस्थान करता है, तब पहले वह आकाशमार्ग से अग्निलोक में जाता है । वहाँ उसके बचे-खुचे मल भी जल जाते हैं । इसके बाद वह वहाँ से ऊपर भगवान श्रीहरि के शिशुमार नामक ज्योतिर्मय चक्र पर पहुँचता है । भगवान विष्णु का यह शिशुमार चक्र विश्वब्रह्मांड के भ्रमण का केन्द्र है । उसका अतिक्रमण करके अत्यंत सूक्ष्म एवं निर्मल शरीर से वह अकेला ही महर्लोक में जाता है । वह लोक ब्रह्मवेत्ताओं के द्वारा भी वंदित है और उसमें कल्पपर्यंत जीवित रहनेवाले देवता विहार करते रहते हैं । फिर जब प्रलय का समय आता है तो नीचे के लोकों को शेष के मुख से निकली हुई अग्नि के द्वारा भस्म होते देख वह ब्रह्मलोक में चला जाता है, जिसमें बड़े-बड़े सिद्धेश्वर विमानों पर निवास करते हैं । ब्रह्मलोक की आयु ब्रह्मा की आयु के समान ही दो परार्द्ध (एक परार्द्ध = १०^{१७}) की है । वहाँ न शोक है न दुःख, न बुढ़ापा है न मृत्यु । फिर वहाँ किसी प्रकार का उद्वेग या भय तो हो ही कैसे सकता है ? वहाँ यदि दुःख है तो केवल एक बात का, वह यही कि इस परम पद को न जाननेवाले लोगों के जन्म-मृत्युमय अत्यंत घोर संकटों को देखकर दयावश वहाँ के लोगों के मन में बड़ी व्यथा होती है । सत्यलोक में पहुँचने के पश्चात् वह योगी निर्भय होकर अपने सूक्ष्म शरीर को पृथ्वी से मिला देता है और फिर उतावली न करते हुए सात आवरणों का भेदन करता है । पृथ्वीरूप से जल को और जलरूप से अग्निमय आवरणों को प्राप्त होकर वह ज्योतिरूप से वायुरुप आवरण में आ जाता है और वहाँ से समय पर ब्रह्म की अनंतता का बोध करानेवाले आकाशरूप आवरण को प्राप्त करता है । इस प्रकार स्थूल आवरणों को पार करते समय उसकी इन्द्रियाँ भी अपने सूक्ष्म अधिष्ठान में लीन होती जाती हैं । घ्राणेन्द्रिय गंधतन्मात्रा में, रसना रसतन्मात्रा में, नेत्र रूपतन्मात्रा में, त्वचा स्पर्शतन्मात्रा में, श्रोत्र शब्दतन्मात्रा में और कर्मेन्द्रियाँ अपनी-अपनी क्रियाशक्ति में मिलकर अपने-अपने सूक्ष्मस्वरूप को प्राप्त हो जाती हैं । इस प्रकार योगी पंचभूतों के स्थूल-सूक्ष्म आवरणों को पार करके अहंकार में प्रवेश करता है । वहाँ सूक्ष्म भूतों को तामस अहंकार में, इन्द्रियों को राजस अहंकार में तथा मन और इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं को सात्त्विक अहंकार में लीन कर देता है । इसके बाद अहंकार के सहित लयरूप गति के द्वारा महत्तत्त्व में प्रवेश करके अंत में समस्त गुणों के लयस्थान प्रकृतिरूप आवरण में जा मिलता है । परीक्षित ! महाप्रलय के समय प्रकृतिरूप आवरण का भी लय हो जाने पर वह योगी स्वयं आनंदस्वरूप होकर अपने उस निरावरण रूप से आनंदस्वरूप शांत परमात्मा को प्राप्त हो जाता है । जिसे इस भगवन्मयी गति की प्राप्ति हो जाती है, उसे फिर इस संसार में नहीं आना पड़ता । परीक्षित ! तुमने जो पूछा था, उसके उत्तर में मैंने वेदोक्त द्विविध सनातन मार्ग सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति का तुमसे वर्णन किया । पहले ब्रह्माजी ने भगवान वासुदेव की

आराधना करके उनसे जब प्रश्न किया था, तब उन्होंने उत्तर में इन्हीं दोनों मार्गों की बात ब्रह्माजी से कही थी ।

संसार-चक्र में पड़े हुए मनुष्य के लिए, जिस साधन के द्वारा उसे भगवान श्रीकृष्ण की अनन्य प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाय, उसके अतिरिक्त और कोई भी कल्याणकारी मार्ग नहीं है । भगवान ब्रह्मा ने एकाग्र चित्त से सारे वेदों का तीन बार अनुशीलन (चिंतन-मनन) करके अपनी बुद्धि से यही निश्चय किया कि जिससे सर्वात्मा भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम प्राप्त हो, वही सर्वश्रेष्ठ धर्म है । समस्त चर-अचर प्राणियों में उनके आत्मारूप से भगवान श्रीकृष्ण ही लक्षित होते हैं, क्योंकि ये बुद्धि आदि दृश्य पदार्थ उनका अनुमान करानेवाले लक्षण हैं, वे इन सबके साक्षी एकमात्र द्रष्टा हैं । परीक्षित ! इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि सब समय और सभी स्थितियों में अपनी संपूर्ण शक्ति से भगवान श्रीहरि का ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करें । राजन् ! संतपुरुष आत्मस्वरूप भगवान की कथा का मधुर अमृत बाँटते ही रहते हैं । जो अपने कानों के दोनों में भर-भरकर उसका पान करते हैं, उनके हृदय से विषयों का विषैला प्रभाव जाता रहता है, वह शुद्ध हो जाता है और वे भगवान श्रीकृष्ण के चरणकमलों की सन्निधि प्राप्त कर लेते हैं । (क्रमशः)

नारी सौभाग्यकरण मंत्र

जो श्रद्धावती नारी प्रतिदिन स्नानादि से शुद्ध होकर सूर्योदय से पहले **'ॐ ॐ ह्रीं ॐ क्रीं ह्रीं ॐ स्वाहा ।'** इस मंत्र की दस मालाएँ करती है, उसके घर में सुख-समृद्धि स्थायी रहती है । इस मंत्र का जप शुभ मुहूर्त में प्रारंभ करना चाहिए । प्रतिवर्ष चैत्र और आश्विन के नवरात्रों में वटवृक्ष की समिधा से विधिपूर्वक हवन करके कन्या, बटुक (ब्रह्मचारी) आदि को भोजन से संतुष्ट करे । इस मंत्र के सम्यक् अनुष्ठान से घर में सुख, शांति तथा समृद्धि बनी रहती है ।

सुखपूर्वक प्रसवकारक मंत्र

ऐं ह्रीं भगवति भगमालिनि चल चल
भ्रामय भ्रामय पुष्पं विकासय विकासय स्वाहा ।

इस मंत्र द्वारा अभिमंत्रित दूध गर्भिणी स्त्री को पिलाने से सुखपूर्वक प्रसव होता है ।

दूसरा उपाय है गर्भिणी स्त्री प्रसव के समय स्वयं 'जम्भला-जम्भला' जप करे ।

तीसरा उपाय है देशी गाय के गोबर का १२ से १५ मि.ली. रस लेकर उसमें निहारते हुए **'ॐ नमो नारायणाय'** मंत्र का २१ बार जप और **'श्रीगुरुगीता'** के कुछ श्लोकों का पाठ गर्भिणी स्वयं करे या कोई अन्य करे और गर्भिणी को वह रस पिलाये । इससे भी प्रसव-बाधाएँ दूर होंगी और बिना शल्यक्रिया के सुखपूर्वक प्रसव होगा ।

प्रसूति के समय अमंगल की आशंका हो तो सर्वकल्याण के लिए निम्न मंत्र का जप करें :

सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥
(श्रीदुर्गासप्तशती)

शक्तिशाली व गोरे पुत्र की प्राप्ति के लिए

गर्भिणी स्त्री ढाक (पलाश) का एक कोमल पत्ता घोंटकर गौदुग्ध के साथ रोज सेवन करे । इससे बालक शक्तिशाली और गोरा होता है । माता-पिता भले काले हों, फिर भी बालक गोरा होगा । इसके साथ सुवर्णप्राश की २-२ गोलियाँ लेने से संतान तेजस्वी होगी ।

जिनकी आर्थिक स्थिति कमजोर है, उन्हें सुवर्णप्राश की एक डिब्बी (मूल्य : ९५ रु.) लेने पर उसके साथ एक और डिब्बी निःशुल्क दी जायेगी ।

कुंडलिनी योग

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

आप भगवान का भजन तो करना चाहते हो, भगवत्तत्त्व का ज्ञान तो पाना चाहते हो, लेकिन 'सबको राजी रखकर फिर भजन करेंगे' ऐसा सोचते हो तो यह संभव नहीं है।

जगत तो अपने ढंग से चलता ही रहेगा। उसमें रहकर ही आपको अपना काम बना लेना है। जगत की ओर देखोगे तो कभी परिवारवाले भजन करने से रोकेंगे, कभी मित्र रोकेंगे, कभी पड़ोसी रोकेंगे तो कभी अपना मन ही रोकेगा। पहले मन बेईमानी करेगा कि 'अरे, शिविर में क्या जाना ? चार दिन की छुट्टी लेकर जाना... फिर आना... इतने दिन जायेंगे... इतना खर्च होगा... क्या फायदा ? चलो, नहीं जाना है।'

बेईमान मन बाहरी फायदे की बात सोचता है। उसे पता ही नहीं है कि शिविर में जाने से कितना और कैसा फायदा होता है। बाहर से फायदा न भी दिखे फिर भी लगे रहोगे तो बदले में भगवान अनंत गुना फल देते हैं।

हरिने भजतां हजी कोईनी लाज जतां नथी जाणी रे... अर्थात् हरि का भजन करनेवाले की लाज (इज्जत) गयी हो ऐसा हमने अभी तक नहीं देखा...

मनुष्य ईश्वर के रास्ते जितना-जितना चलता है, महापुरुषों के दैवी कार्यों में लगा रहता है, उनके चरणों में बैठकर भगवच्चर्चा सुनता है, उतना-उतना उन्नत होता जाता है, उसके पुण्य बढ़ते जाते हैं, उसके माता-पिता, पुत्र-परिवार भी उन्नत होते हैं।

भगवच्चर्चा और भगवद्ज्ञान सुनने से मन-बुद्धि शुद्ध और पवित्र होते हैं, सूक्ष्म होते हैं। भगवद्ध्यान और योग-साधना से प्राण सूक्ष्म होते हैं। प्राण जितने सूक्ष्म होंगे उनका सामर्थ्य उतना ही ज्यादा होगा। जैसे, पानी की एक बूँद जब वाष्प बनती है तो उसमें १३०० गुनी ताकत आ जाती है और बड़ी-बड़ी रेलगाड़ियों को ले भागती है।

पृथ्वी से जल सूक्ष्म है, जल से वायु सूक्ष्म है। जो अपने प्राणों को सूक्ष्म-सूक्ष्मतर बनाता है, उस योगी के आगे तो यक्ष, गंधर्व, किन्नर, देवता, अप्सराएँ आदि भी हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं, औरों की तो बात ही क्या है ?

यह कुंडलिनी योग की साधना है। जब कुंडलिनी कार्य करने लगती है तो शरीर-शुद्धि की चेष्टाएँ होने लगती हैं, मन अंतर्मुख होने लगता है और ध्यान करना नहीं पड़ता, होने लगता है।

जब यह अंतर्चेतना जाग्रत होती है, तब साधक को अनेक आश्चर्यजनक अनुभव होने लगते हैं। किसीके शरीर में कोई रोग है या मन में कोई तनाव है तो उसे दूर करने के लिए उचित क्रियाएँ, आसन अपने-आप होने लगते हैं। ये आसन किसीने अपने मन से नहीं बनाये हैं वरन् ध्यान की ऊँची अवस्था में अपने-आप होने लगते हैं। उस अनुभव के बाद ही आसनों को ठीक ढंग से वर्णनात्मक रूप से पेश किया गया।

ध्यान में कभी ऐसा लगता है कि शरीर बहुत भारी हो गया है, कभी एकदम हलका फूल जैसा लगता है। कभी बहुत रोना आता है तो कभी बहुत हँसी आती है। कभी भय लगता है तो कभी हर्ष होता है। कभी ऐसे-ऐसे गीत-श्लोक आदि का उच्चारण होने लगता है, जो साधक ने कभी सुने भी न हों। कभी

आसन होने लगते हैं तो कभी नृत्य होने लगता है।

मीराबाई कहीं नृत्य सीखने नहीं गयी थीं, उनका नृत्य भीतर से जगा था। मीराबाई रोती थीं तो मुसीबतों के कारण नहीं वरन् भगवद्भक्ति में रोना आता था। इस रुदन में आँखों में आँसू तो दिखते हैं लेकिन हृदय में आनंद होता है।

जो मनुष्य रो नहीं सकता समझो, उसका पूर्ण विकास नहीं हुआ है। कहीं-न-कहीं अहंकार ने उसके विकास को दबा रखा है। जैसे आपने खेत में थोड़े बीज फेंके तो उनमें से कुछ उगते हैं और कुछ नहीं उग पाते। जो बीज नहीं उग पाते उनके ऊपर कोई कंकड़-पत्थर है, कोई दबाव है, जिसके कारण वे नहीं उग पाते हैं। ऐसे ही जिसका चित्त किसी-न-किसी बोझ से दबा है वह न तो ईमानदारी से रो सकता है न हँस सकता है।

अगर कोई जप-ध्यान करके चित्त को स्थिर करे, सत्संग-स्वाध्याय से अपने आत्मबल को जगाये तो उसका चित्त बाहर की परिस्थितियों से या भीतर के विकारों से प्रभावित नहीं होगा।

कई साधकों को ऐसा भी अनुभव होता है कि दीक्षा लेकर वे जबसे साधना में लगे, तबसे उन्हें क्रोध ज्यादा आने लगा, कामविकार सताने लगा। ऐसा क्यों होता है ? जैसे, हम घर में बुहारी करते हैं तो घर में छुपी हुई गंदगी आँगन में दिखने लगती है, ऐसे ही जब आद्यशक्ति कुंडलिनी जाग्रत होती है तो जो पुराने संस्कार छिपे हुए हैं, उन्हें बाहर निकालती है। ऐसा करके वह शक्ति एक-एक करके केन्द्रों की शुद्धि करती है।

योग-साधना के मार्ग पर और भी कई प्रकार के अनुभव होते हैं। साधक ध्यान करता है और नासाग्र पर उसकी दृष्टि एकाग्र होती है तो गंध प्रत्याहार सिद्ध होता है। जिससे अमुक प्रकार की सुगंध आती है। गंध प्रत्याहार सिद्ध होने पर जिस-जिस प्रकार की सुगंध आयी, उसीके आधार पर गूगल, लोबान, धूप आदि की ध्यान हेतु उपयोगिता खोज निकाली गयी। हिन्दू लोग साधना के समय गूगल का उपयोग करते हैं और मुसलमान लोबान का। इनकी सुगंध से बातावरण भी सात्त्विक होता है और मन भी। हमारे यहाँ जो होम-हवन आदि की प्रथा है उसका भी उद्देश्य यही है।

साधना करते-करते जब मन और प्राण ऊपर के केन्द्रों में आ जाते हैं, तब आदमी खतरे से पार हो जाता है। इसलिए साधकों से बार-बार कहा जाता है कि भ्रूमध्य में तिलक करो और इष्टमंत्र अथवा गुरुमंत्र का भ्रूमध्य में ध्यान करके उसका जप करो, ताकि खतरे में ज्यादा देर रुके बिना अपनी जीवनशक्ति को ऊपर ला सको, जीवनदाता परमात्मा की प्राप्ति का सामर्थ्य पा सको।

योग समान बल नहीं, सांख्य समान ज्ञान नहीं और भक्ति समान रस नहीं...

साधक की अपनी-अपनी योग्यता और रुचि के अनुसार साधना होती है। प्रेमाभक्ति से रस आता है लेकिन प्रेम में ज्ञान नहीं हो तो कामविकार आने का भय रहेगा और ज्ञान में प्रेम नहीं होगा तो ज्ञान शुष्क रह जायेगा। ज्ञान और प्रेम के साथ योग नहीं होगा तो सामर्थ्य नहीं आयेगा। ज्ञान और प्रेम हो, साथ में ध्यानयोग हो तो साधक का सर्वांगीण विकास होता है।

कुंडलिनी योग की साधना भीतर से प्रेम जगाती है, योग भी करवाती है और साधक को सद्गुरु तत्त्व की तरफ, ज्ञान की तरफ ले जाती है क्योंकि साधना करने से मति सूक्ष्म होती है और सूक्ष्म मति ज्ञान को शीघ्र ही ग्रहण कर लेती है।

जो आज महाकवि कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हैं वे पहले महामूर्ख थे। वे जिस डाल पर बैठे थे उसीको काँट रहे थे। पंडितों और मंत्रियों ने विदुषी राजकुमारी विद्योत्तमा से बदला लेने के लिए इन महामूर्ख को मौनी पंडित घोषित करके डोली में आदरसहित ले जाकर धोखाधड़ी से राजकुमारी के साथ इनका विवाह करा दिया। राजकुमारी को जब वास्तविकता का पता चला तो उसने इन्हें ताना मारा कि 'झूठमूठ के विद्वान होकर मुझे वरा है तो अब सचमुच के विद्वान होकर ही मुँह दिखाना।' लग गयी चोट और देवी की उपासना की तो महामूर्ख में से महाकवि कालिदास बन गये। उन्होंने 'रघुवंश' काव्य एवं 'शाकुंतलम्' नाटक लिखा। प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटे 'शाकुंतलम्' की प्रति सिर पर रखकर नाचा था यह घटना प्रसिद्ध है। इस तरह सबके अंदर अद्भुत सामर्थ्य छुपा है। (क्रमशः)

गौ और गीता विश्व को ईश्वर द्वारा प्रदत्त अमूल्य निधि है। इन दोनों का आश्रय लेकर मनुष्य स्वस्थ, सुखी व सम्मानित जीवन प्राप्त कर सकता है।

- परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

महापुरुषों एवं विद्वानों की दृष्टि में 'गाय'

* जब तक गौमाता का रुधिर (रक्त) भूमि पर गिरता रहेगा, कोई धार्मिक, सामाजिक अनुष्ठान सफल नहीं होगा। **- श्री देवरहा बाबा**

* यदि हम संसार में हिन्दू कहलाकर जीवित रहना चाहते हैं तो सर्वप्रथम हमें प्राणपण से गौरक्षा करनी होगी। **- श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी**

* एक गाय अपने जीवनकाल में ४,१०,४४० मनुष्यों हेतु एक समय का भोजन जुटा सकती है, जबकि उसके मांस से केवल ८० मांसाहारी एक समय अपना पेट भर सकते हैं।

* गौवंश धर्म, संस्कृति व स्वाभिमान का प्रतीक रहा है। **- स्वामी दयानंद सरस्वती**

* गाय का दूध रसायन, गाय का घी अमृत तथा मांस बीमारियों का घर है।

- पैगंबर हजरत मोहम्मद साहेब

* कुरान और बाइबिल, दोनों धार्मिक ग्रंथों का मैंने अध्ययन किया है। उन ग्रंथों के अनुसार अप्रत्यक्ष रूप से भी गौहत्या करना जघन्य पाप है।

- आचार्य विनोबा भावे

* गाय उन्नति और प्रसन्नता की जननी है। गाय कई प्रकार से अपनी जननी से भी श्रेष्ठ है।

- महात्मा गाँधी

* जबसे गाय एवं अन्य पशुओं की निर्दयतापूर्वक हत्या प्रारंभ हुई है, तबसे हम अपने बच्चों के भविष्य के प्रति चिंतित हो गये हैं।

- श्री लाला लाजपत राय

* चाहे मुझे मार डालो, पर गाय पर हाथ न उठाओ।

- लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

* भारत में गौ-पालन सनातन धर्म है।

- भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद

* भारतीय संविधान की पहली धारा संपूर्ण गौवंश-हत्या निषेध की होनी चाहिए।

- पं. मदनमोहन मालवीयजी की अंतिम इच्छा

* गौहत्या हेतु मुस्लिम-आग्रह मूर्खता की पराकाष्ठा है। **- सुलतान अहमद खान**

* मेरे विचार से भारत की वर्तमान परिस्थिति में गौहत्या-निषेध से बढ़कर कोई वैज्ञानिक तथा विवेकपूर्ण कृत्य नहीं है।

- श्री जयप्रकाश नारायण

* गौवंश के प्रति प्रशासन का अपमानजनक व्यवहार ब्रिटिश शासन के घृणित कार्य के रूप में जाना जायेगा। **- लार्ड लिनलिथगो**

* गाय हमारी अर्थव्यवस्था का आधार है।

- श्री ज्ञानी जैलसिंह (भूतपूर्व राष्ट्रपति)

* न तो कुरान और न अरब देशों की प्रथा ही गाय की कुर्बानी (हत्या) की इजाजत देती है।

- हकीम अजमल खान

** 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्यता क्रमांक/रसीद-क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में ये नहीं लिखे होंगे, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा। * नये सदस्यों को सदस्यता के अंतर्गत वर्तमान अंक के अभाव में उसके बदले एक पूर्व प्रकाशित अंक भेजा जायेगा।*

शीघ्र लाभकारी प्राणायाम-चिकित्सा

वायु की अंतरंग शक्ति का नाम है - प्राण । श्वास द्वारा हम इस शक्ति को निरंतर प्राप्त करते हैं । श्वास स्थूल हैं तो प्राण सूक्ष्म व सर्वत्र व्याप्त हैं । प्राण को ही प्राणशक्ति या जीवनशक्ति भी कहते हैं । इस शक्ति का आयाम अर्थात् विस्तार करने की क्रिया का नाम है - प्राणायाम । प्राण-चिकित्सा में व्याधि का मूल कारण निर्बल प्राण अर्थात् जीवनशक्ति का ह्रास माना गया है । प्राण निर्बल हो जाने पर शरीर में रक्तसंचार धीमा हो जाता है, अंग-प्रत्यंग ढीले पड़ जाते हैं व ठीक से कार्य नहीं कर पाते । प्राणायाम से प्राणबल बढ़ता है, रक्तसंचार सुव्यवस्थित होने लगता है, कोशिकाओं को पर्याप्त ऊर्जा मिलती है । इससे हृदय, मस्तिष्क, गुर्दे, फेफड़े आदि शरीर के सभी प्रमुख अंग बलवान व कार्यशील हो जाते हैं । रक्त-नाड़ियाँ तथा मन भी शुद्ध हो जाता है ।

'मनुस्मृति' में आता है :

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

'जैसे स्वर्णादि धातुओं को अग्नि में गलाने से उनके मल नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम करने से शरीर की इन्द्रियों के दोष दूर हो जाते हैं ।' (६.७१)

प्रायः अधिकांश व्यक्ति गहरे श्वास लेने के अभ्यस्त नहीं होते, जिससे फेफड़ों का लगभग एक चौथाई भाग ही कार्य करता है, तीन चौथाई भाग निष्क्रिय पड़ा रहता है । इसका विपरीत परिणाम रक्तशुद्धि-प्रक्रिया पर पड़ता है । रक्तशुद्धि सम्यक् रूप से न होने से शरीर के अन्य अंगों की क्रियाशक्ति घट जाती है । गहरे श्वास लेने से फेफड़ों की सभी कोशिकाएँ प्राण ऊर्जा से भर जाती हैं । इतना ही नहीं, नाड़ियों के माध्यम से शरीर के एक-एक अंग में इस प्राणशक्ति का संचार होने लगता है । श्वसनक्रिया, हृदय की गति, आहार का सप्तधातु आदि में परिवर्तन, मांसपेशियों का आकुंचन-प्रसरण, रक्तसंचरण, अंतःस्रावी ग्रंथियों का स्रावोत्पादन, मल-निष्कासन तथा मस्तिष्क की क्रियाओं का व्यवस्थापन आदि सभी प्रकार की शारीरिक प्रक्रियाओं का नियमन इस प्राणशक्ति के द्वारा ही होता है । केवल शारीरिक ही नहीं, अपितु मानसिक संतुलन बनाये रखने में भी प्राणायाम महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । जैसे इन्द्रियों का स्वामी मन है, वैसे मन का स्वामी प्राण है । प्राणायाम के अभ्यास से जब प्राणों की गति नियमित हो जाती है, तब मन स्वाभाविक ही स्थिर हो जाता है ।

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलो भवेत् ।

'प्राणों के चलायमान होने पर मन भी चलायमान होता है तथा प्राणों के निश्चल होने पर मन चंचलता को छोड़ निश्चल हो जाता है ।'

मन शांत होने से बुद्धि को भी विश्रांति मिलती है । शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक सामर्थ्य बढ़ाने में प्राणायाम महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।

हमारे शरीर में प्राणों का वहन करनेवाली असंख्य नाड़ियाँ हैं, जिनमें चौदह मुख्य हैं तथा इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना ये तीन प्रधान नाड़ियाँ हैं ।

श्वासों का गमनागमन जब बायें नथुने से होता है, तब प्राणों का वहन इड़ा नाड़ी से होता है, इसे 'चंद्र स्वर' कहते हैं । इससे शरीर में शीतलता का संचार होता है । श्वासों का गमनागमन जब दाहिने नथुने से होता है, तब प्राणों का वहन पिंगला नाड़ी से होता है । यह 'सूर्य स्वर' है, इससे शरीर में उष्णता उत्पन्न होती है ।

शीतलता अर्थात् सौम्य तत्त्व व उष्णता अर्थात् आग्नेय तत्त्व इन दोनों के साम्यावस्था में रहने से

ही हमारे शरीर का संतुलन बना रहता है । इनमें विषमता होने पर रोगों का प्रादुर्भाव होता है । प्राणायाम के दीर्घ अभ्यास से जब सुषुम्ना नाड़ी क्रियाशील होती है, तब प्राणों का वहन दोनों नथुनों से होने लगता है अथवा दायें व बायें नथुने से अदल-बदलकर होने लगता है । यह मध्य स्वर है । प्राणायाम के अभ्यास से यह मध्य स्वर दीर्घकाल तक चलता रहता है । शरीर में शीतलता तथा उष्णता के संतुलन के लिए यह स्थिति आवश्यक है । साधक, बुद्धिजीवी वर्ग, गहन चिंतन करनेवालों के लिए यह बहुत लाभकारी अवस्था है ।

प्राणायाम-सम्बंधी आवश्यक निर्देश

१. प्राणायाम शौच-स्नानादि से निवृत्त होकर, प्रातः सूर्योदय के समय पवित्र व खुले स्थान पर सिद्धासन, पद्मासन या सुखासन में बैठकर करने चाहिए । त्रिकाल संध्या के समय तथा तुलसी के समीप या पीपल के नीचे बैठकर करने से विशेष लाभ होता है ।

२. भोजन करने से आधा घंटा पूर्व व भोजन के चार घंटे बाद प्राणायाम किये जा सकते हैं ।

३. भोजन सात्त्विक व चिकनाईयुक्त हो । दूध, घी व फलों का प्रयोग हितकर है । प्राणायाम की सिद्धि के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन आवश्यक है ।

४. अपनी-अपनी प्रकृति और ऋतु (शीत या ग्रीष्म ऋतु) के अनुकूल (शरीर व्याधिग्रस्त हो तो तदनुसार) प्राणायाम करने चाहिए ।

५. प्राणायाम की संख्या धीरे-धीरे बढ़ायें । एक बार संख्या बढ़ाने के बाद फिर घटानी नहीं चाहिए ।

(१) अनुलोम-विलोम प्राणायाम : यह सबसे सरल एवं उत्तम है ।

विधि : पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठ जायें । दोनों नथुनों से पूरा श्वास बाहर निकाल दें । दाहिने नथुने को बंद करके बायें नथुने से धीरे-धीरे परंतु गहरा श्वास लें । इसे 'पूरक' कहते हैं । अब श्वास को यथाशक्ति रोककर रखें । यह हुआ 'आभ्यंतर कुंभक' । फिर बायें नथुने को बंद करके श्वास को दाहिने नथुने से धीरे-धीरे छोड़ें । इसे 'रेचक' कहते हैं । रेचक के बाद कुछ देर तक श्वास को बाहर ही रोके रखें । इसे 'बाह्य कुंभक' कहते हैं । अब दाहिने नथुने से पुनः श्वास लें और थोड़े समय तक रोककर बायें नथुने से धीरे-धीरे छोड़ें । पूरा श्वास बाहर निकल जाने के बाद कुछ समय तक श्वास को बाहर ही रोके रखें । यह एक प्राणायाम पूरा हुआ ।

प्राणायाम में पूरक, आभ्यंतर कुंभक, रेचक व बाह्य कुंभक के समय का अनुपात इस प्रकार है - १:४:२:२ अर्थात् श्वास लेने में यदि १० सेकंड लगायें तो ४० सेकंड अंदर रोककर रखें । २० सेकंड श्वास छोड़ने में लगायें तथा २० सेकंड बाहर रोकें । यह आदर्श अनुपात है । धीरे-धीरे नियमित अभ्यास द्वारा इस स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है ।

२० सेकंड पूरक, ८० सेकंड आभ्यंतर कुंभक, ४० सेकंड रेचक व ४० सेकंड बाह्य कुंभक यह उत्तम प्राणायाम है । कुंभक की अवस्था में मानसिक जप अत्यंत लाभदायी है । इस प्रकार जपसहित प्राणायाम को 'सबीज प्राणायाम' कहा जाता है । ऐसे ५ प्राणायाम से शुरुआत करके ६... ७... इस प्रकार बढ़ाते हुए कम-से-कम १० प्राणायाम तो नियमित करें ।

लाभ : ❊ इससे श्वास लयबद्ध तथा सूक्ष्म हो जाते हैं, साधक स्वास्थ्य के साथ-साथ आध्यात्मिकता में भी शीघ्रता से अग्रसर होता है ।

❊ मानसिक तनाव दूर होता है । नकारात्मक विचार परिवर्तित होकर सकारात्मक होने लगते हैं । आनंद, उत्साह व निर्भयता की प्राप्ति होती है ।

(क्रमशः)

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें । इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी । अतः अपनी राशि मनी ऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें ।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी ।

भोजन : एक नित्य यज्ञकर्म

प्रतिक्षण होनेवाले कायिक, वाचिक व मानसिक कर्मों के कारण शारीरिक शक्ति क्षीण होती रहती है। इस शक्ति को पुनः प्राप्त करने हेतु प्रतिदिन लिया जानेवाला आहार ईंधन का कार्य करता है।

आयुर्वेद के अग्रगण्य आचार्य महर्षि चरक कहते हैं :

वर्णः प्रसादः सौस्वर्यं जीवितं प्रतिभा सुखम् ।
तुष्टिः पुष्टिर्बलं मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ।

'वर्ण, प्रसन्नता, सुंदर स्वर, जीवन, प्रतिभा, सुख, संतोष, शरीर की पुष्टि, बल, मेधा (धारणाशक्ति) - ये सभी अन्न से ही प्रतिष्ठित हैं।'

(चरक संहिता, सूत्रस्थानम् : २७.३४९,३५०)

आहाररूपी लकड़ी से जठराग्नि जलती रहती है और इसके न मिलने पर वह शांत हो जाती है।

हितकारी आहार-विहार करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुष सज्जनों से प्रशंसा प्राप्त करते हुए १०० वर्षों तक जीवित रहते हैं।

हितकर-अहितकर आहार : जो आहार-द्रव्य सम धातुओं को स्वाभाविक रूप में सम ही रखे और विषम धातुओं को सम कर दे उसे हितकर कहा जाता है। इसके विपरीत जो आहार-द्रव्य सम धातुओं को विषम बना दे और विषम धातुओं को और अधिक विकृत कर दे उसे अहितकर कहा जाता है।

शरीर की सभी धातुओं को सम रखने के लिए आहार का सर्वरसयुक्त होना आवश्यक है।

श्री वाग्भट्टाचार्य कहते हैं : **नित्यं सर्वरसाभ्यासः ।**

'स्वस्थ व्यक्ति को सभी रसों का नित्य सेवन करना चाहिए।'

इस प्रसंग में श्री चरकाचार्य कहते हैं :

सर्वरसाभ्यासो बलकराणाम्,
एकरसाभ्यासो दौर्बल्यकराणाम् ।

'सदा सब रसों का सेवन सर्वोत्तम बलकारी व एक रस का सेवन सर्वाधिक दौर्बल्यजनक है।'

(चरक संहिता, सूत्रस्थानम् : २५.४०)

रस छः प्रकार के होते हैं - मधुर या मीठा, खट्टा, खारा, तीखा, कड़वा व कसैला। शरीर में वात, पित्त व कफ इन त्रिदोषों की स्थिति इन षड्रसों पर ही निर्भर होती है। जैसे -

स्वाद्वम्ललवणा वायुं कषायस्वादुतिक्तकाः ।
जयन्ति पित्तं, श्लेष्माणं कषायकटुतिक्तकाः ।

'मीठा, खट्टा व खारा रस वातशामक, कसैला, मीठा व कड़वा रस पित्तशामक और कसैला, तीखा व कड़वा रस कफशामक हैं।' (चरक संहिता, सूत्रस्थानम् : १.६६)

इसके विपरीत तीखा, कड़वा व कसैला रस वातप्रकोपक, खट्टा, तीखा व खारा रस पित्तप्रकोपक और मीठा, खट्टा व खारा रस कफवर्धक हैं।

अपनी प्रकृति, देश, काल, ऋतु, उम्र व सात्म्य-असात्म्य (हितकर-अहितकर) का विचार कर तदनुसार आहार का सेवन करने से त्रिदोष सम अवस्था में रहते हैं।

आहार में षड्रसों का अनुक्रम

आहार में सामान्यतः सर्वप्रथम मीठे व स्निग्ध, मध्य में प्रथम खट्टे व खारे तथा बाद में तीखे व कड़वे एवं अंत में कसैले व द्रवरूप पदार्थों का सेवन करना चाहिए। इसीलिए भोजन के बाद छाछ पीने का विधान है।

भोजन के पूर्व रिक्त जठर में वायु की बहुलता रहती है। भोजन में प्रथम मीठे व स्निग्ध पदार्थों का सेवन करने से वायु का शमन हो जाता है। ये पदार्थ पचने में भी भारी होते हैं। इसलिए सर्वप्रथम इनका सेवन करना उचित है। बाद में खट्टे व खारे पदार्थों का सेवन करने से शेष वात का तो शमन होता ही है, साथ ही ये पदार्थ उष्ण होने के कारण जठराग्नि को भी बढ़ाते हैं, जिससे पाचनक्रिया तीव्र होती है। तीखे पदार्थ भी पाचन में मदद करते हैं। कड़वे व कसैले पदार्थ जिह्वा, मुख तथा कंठ की शुद्धि करते हैं तथा

भोजन के बाद स्वाभाविक होनेवाली कफ की वृद्धि को भी नियंत्रित करते हैं।

षड्रसों के गुण-कर्म :

(१) मधुर या मीठा रस : यह स्निग्ध, शीत, पचने में भारी तथा पित्त एवं वायु शामक है। यह जन्म से ही सभीको प्रिय व शरीर के लिए सात्म्य (अनुकूल) होने से बाल, वृद्ध, दुर्बल, कृश - सभीके लिए हितकर है। यह रस-रक्तादि सप्त धातुओं को बढ़ानेवाला, आयुवर्धक, अंतःकरण एवं ज्ञानेन्द्रियों को निर्मल व अपने कर्मों में निपुण बनानेवाला, बलवर्धक, पुष्टिदायक, शरीर के वर्ण व कांति को सुधारनेवाला, नेत्रज्योतिवर्धक, भग्न अस्थियों को जोड़नेवाला, बालों के लिए हितकर तथा शरीर में स्फूर्ति व मन में तृप्ति लानेवाला है। कृश व दुर्बल लोगों के लिए मधुर रसयुक्त पदार्थों का सेवन विशेष हितकर है।

मधुर रसयुक्त पदार्थ : दूध, घी, शहद, किशमिश, मिश्री, मधुर फलों का रस, सुवर्ण आदि।

मधुर रस के अति सेवन से हानि : मधुर रस इतना लाभदायी होते हुए भी मधुर पदार्थों का अति सेवन हितावह नहीं है। इससे कफ की वृद्धि होकर आलस्य, अति निद्रा, अरुचि, मंदाग्नि, स्थूलता, मधुमेह, रक्तवाहिनियों में अवरोध, हृदयरोग, श्वास, पेट में कृमि आदि रोग उत्पन्न होते हैं। उपवास व दीपन-पाचन औषधियों द्वारा इन्हें दूर किया जा सकता है। (क्रमशः)

कल्याणकारक सुवर्णप्राश

आयुर्वेद के श्रेष्ठ ग्रंथ 'अष्टांगहृदय' तथा 'कश्यप संहिता' में बालकों पर किये जानेवाले १६ संस्कारों के अंतर्गत सुवर्णप्राश का उल्लेख आता है। नवजात शिशु को जन्म से एक माह तक प्रतिदिन नियमित रूप से सुवर्णप्राश देने से वह अतिशय बुद्धिमान बनता है और सभी प्रकार के रोगों से उसकी रक्षा होती है। सुवर्णप्राश मेधा, बुद्धि, बल, जठराग्नि तथा आयुष्य बढ़ानेवाला, कल्याणकारक व पुण्यदायी है। यह ग्रहबाधा व ग्रहपीड़ा को भी दूर करता है।

६ मास तक नियमित रूप से इसका सेवन करने से बालक श्रुतिधर होता है अर्थात् सुनी हुई हर बात धारण कर लेता है। उसकी स्मरणशक्ति बढ़ती है, शरीर का समुचित विकास होता है तथा वह चपल बनता है। सुवर्णप्राश शरीर की कांति उज्ज्वल बनाता है व भूख बढ़ाता है, जिससे बालक का शरीर पुष्ट होता है। यह बालकों की रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ाता है, जिससे बाल्यावस्था में बार-बार उत्पन्न होनेवाले सर्दी, खाँसी, जुकाम, दस्त, उलटी, न्यूमोनिया आदि कफजन्य विकारों से छुटकारा मिलता है।

यह एक प्रकार का आयुर्वेदिक रोगप्रतिरोधक टीका भी है, जो बालकों की पोलियो, क्षयरोग (टी.बी.), विसूचिका (कॉलरा) आदि से रक्षा करता है।

विद्यार्थी भी स्मरणशक्ति व शारीरिक शक्ति बढ़ाने के लिए इसका उपयोग कर सकते हैं। यह एक उत्तम गर्भपोषक है। इसमें उपस्थित शुद्ध केसर बालक के वर्ण में निखार लाता है। गर्भवती महिलाएँ प्राणिजन्य कैल्शियम, लौह, जीवनसत्त्वों (विटामिन्स) की गोलियों के स्थान पर अगर सुवर्णप्राश का प्रयोग करें तो वे स्वस्थ, तेजस्वी-ओजस्वी व मेधावी संतान को जन्म दे सकती हैं। इसके साथ ताजा, स्निग्ध, सुपाच्य व सात्त्विक आहार लेने से गर्भस्थ शिशु को विशेष लाभ होता है।

वृद्धावस्था में, स्मृतिविभ्रम, मानसिक अवसाद आदि लक्षणों में, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदयरोग, स्त्रीरोग आदि में तन-मन को सक्षम बनाने के लिए यह विशेष लाभदायी है।

- धन्वंतरि आरोग्य केन्द्र, संत श्री आसारामजी आश्रम, अमदावाद।

मिटी कष्टों की तपन

सन् २००१ में मुझे पूज्य बापूजी से दीक्षा लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । २९ जुलाई २००३ की शाम को एक ट्रक एवं बस के बीच में आकर मेरा एक्सीडेंट हो गया ।

मेरी छाती की कुल १९ हड्डियाँ टूट गयीं एवं गले के नीचे की दाहिनी तरफ की हड्डी टूटकर लटक गयी । मुझे यहाँ के सुप्रसिद्ध 'कलकत्ता हॉस्पिटल' में ले जाया गया। दूसरे दिन वहाँ के डॉक्टरों ने मेरे घरवालों को मुझे आखिरी बार आकर देख लेने के लिए कहा । यह जानकर कोलकाता आश्रम में उपस्थित ३०० साधक भाई-बहनों एवं मेरे घरवालों ने मेरे जीवन की रक्षा के लिए पूज्य बापूजी से प्रार्थना की एवं सामूहिक रूप से २१ बार 'महामृत्युंजय मंत्र' का जप किया। बापूजी की कृपा से मैं मौत के मुँह से बाहर आ गया, मुझे दूसरा जन्म मिला है।

मुझ पर राहु ग्रह की बाधा चल रही है और वह कई वर्षों तक चलेगी ऐसा एक मशहूर ज्योतिषी ने १५ वर्ष पहले मुझे बताया था। उनके अनुसार अभी भी राहु के प्रभाव के कारण मेरा कुछ बुरा वक्त बाकी है। मैंने दीक्षा लेने से पूर्व ११ वर्षों तक कामकाज में तथा और भी कई प्रकार से तकलीफें सहन कीं। मगर पूज्य बापूजी से दीक्षा लेने के बाद मेरा काम ठीक चल रहा है। मुझे हर विकट परिस्थिति में ऐसा एहसास होता रहा है कि कोई दैवी शक्ति मेरी मदद कर रही है और मेरे कष्टों का निवारण कर रही है। अब मुझे एकदम निश्चिंतता महसूस होती है।

पहले मैं करीब २०-२५ ज्योतिषियों के पास जाता था। हर कोई ग्रहबाधा की बात कहते और कीमती पत्थर पहनने को कहते। मगर बापूजी से दीक्षा लेने के बाद मुझे कभी भी ज्योतिषियों के पास जाने की जरूरत महसूस नहीं हुई, न कभी इसका ख्याल ही आया।

आत्मज्ञान एवं योग-सामर्थ्य दोनों का अनोखा संगम जिनमें है, ऐसे मेरे सद्गुरुदेव की शरण में आनेवालों की कठिनाइयाँ तथा विपत्तियाँ छू हो जाती हैं और उनकी समझ बहुत ऊँची हो जाती है। पूज्य बापूजी का सत्संग सुनने से व्यक्ति देहभाव से ऊपर उठ जाता है तथा उसकी समता और सामर्थ्य बढ़ जाता है। तन-मन तक ही जिनका प्रभाव रहता है वे बेचारे ग्रह उसे क्या हानि पहुँचा सकेंगे ? वे तो उसके अनुकूल होने में ही अपना अहोभाग्य समझेंगे।

– राकेश अरोरा, पी-८०८, लेक टाउन, फर्स्ट फ्लोर, ब्लॉक-ए, कोलकाता-८९.

(पृष्ठक्र. ८ का शेष) अनेक बार मृत्यु के प्रसंग आने पर भी प्रह्लाद उनसे बच जाता था। यहाँ तक कि अग्नि द्वारा न जलाये जाने का वरदान प्राप्त करनेवाली होलिका द्वारा उसे अग्नि में जलाने का यत्न किया जाने पर भी सत्य एवं दृढ़ निष्ठा का प्रतिरूप वह भक्तराज बच गया और छल-कपट, ईर्ष्या, वैर आदि आसुरी वृत्तियों का प्रतीक होलिका जलकर राख हो गयी।

यह होली पर्व यही संदेश देता है कि आप भी काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि आसुरी संपदा के गुणों को जलाकर अपने जीवन में भगवत्प्रेम, इष्ट-निष्ठा, धैर्य, सहिष्णुता, निर्भयता आदि दैवी संपदा के गुणों को भरिये और प्रह्लाद की नाईं विघ्न-बाधाओं के बीच भी भगवन्निष्ठा टिकाये रखते हुए भवसागर से पार हो जाइये... आपकी होली मंगलमय होली हो जाय...

सत्संग द्वारा बुद्धि विवेक पाती है और गुरुज्ञानरूपी रंग से रँगकर सत्य में प्रतिष्ठित हो जाती है। आप भी पहुँच जाइये किन्हीं ऐसे संत-महापुरुष की शरण में जिन्होंने अपनी चुनरी को परमात्म-ज्ञानरूपी रंग से रँगा है और रँग जाइये उनके रंग में।

साहेब है मेरो रंगरेज चुनरी मोरी रँग डारी।
धोये से छूटे नहीं दिन-दिन होत सुरंग,
स्याही रंग छुड़ाय के दियो भक्ति का रंग ॥
होली हुई तब जानिये पिचकारी गुरुज्ञान की लगे...

जीवन में कैसी भी विकट परिस्थिति आये, फिर भी आप प्रह्लाद की नाईं अपनी श्रद्धा तथा अपने आत्मिक-पारमार्थिक विश्वास को अडिग बनाये रखें, ताकि आपका चित्त भगवान और भगवद्भक्तिमयी होली के रंग से रँग जाय...

['ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि]

सागवाड़ा (राज.) : ८ वर्षों के लंबे अंतराल के बाद पूज्यश्री सागवाड़ा पधारे । यहाँ आयोजित दो दिवसीय सत्संग-कार्यक्रम (५ व ६ फरवरी) के पहले ही दिन महिपाल मैदान में विशाल आध्यात्मिक मेले का माहौल सृजित हुआ ।

पूज्यश्री ने यहाँ के लोगों को प्रकृति-प्रदत्त हास्यरूपी टॉनिक का लाभ लेने हेतु 'देव-मानव हास्य प्रयोग' की सरल कुंजी बतायी तथा इसका अभ्यास भी कराया । इससे समस्त पंडाल में मधुर हास्य की छटा छा गयी । आनंद-उल्लास से हजारों-हजारों श्रोता प्रफुल्लित हो उठे । इस प्रकार चित्त में प्रसन्नता व परिवार में सुख-शांति लाने हेतु पूज्य बापूजी द्वारा बताये गये विभिन्न सरल किंतु सूक्ष्म प्रयोगों के तत्काल प्रभाव का यहाँ के श्रद्धालुओं ने प्रत्यक्ष अनुभव किया ।

पूज्यश्री की दिव्य आध्यात्मिक आभा एवं दैवी आकर्षणी शक्ति का ही यह अद्भुत प्रभाव था कि स्वार्थ, अशांति, चंचलता, भौतिकता आदि की भरमारवाले इस घोर कलियुग में भी यहाँ उपस्थित विशाल जनसमुदाय प्रातः ९-३० बजे से दोपहर १-०० बजे तक धैर्य व शांति पूर्वक सत्संग-अमृत का रसपान करते हुए बैठा रहा ।

श्रद्धालुओं की संत-सान्निध्य व भगवत्कथा में प्रीति की सराहना करते हुए पूज्यश्री ने भारत देश को 'मुक्तिप्रधान, पुण्यप्रधान, सत्संगप्रधान देश' कहकर संबोधित किया और कहा कि ''जिस प्रकार जहाँ सूर्य वहाँ प्रकाश, जहाँ चंद्रमा वहाँ चाँदनी, जहाँ बर्फ वहाँ शीतलता होती है, उसी प्रकार जहाँ संत वहाँ सत्संग होता है । सत्संग इहलोक व परलोक का सुधार करनेवाला दिव्य साधन है ।''

आंध्र प्रदेश में सागरतट पर बसे **विशाखापटनम्** में ११ से १३ फरवरी तक और **हरदा (म.प्र.)** में १७ व १८ फरवरी को पूज्यश्री की योग, भक्ति एवं भावमयी ज्ञानगंगा बही ।

संसार के विभिन्न दुःखों से दुःखी, आपदाओं से त्रस्त मानव-जाति को पूज्यश्री सुखमय जीवन जीने की सनातनी विद्या सिखाते हैं । जबरदस्ती से किसीकी धूम्रपान, मद्यपान या पान-मसाले आदि की लत छुड़ाना असंभव-सा है परंतु यदि पीड़ित व्यक्ति स्वयं अपनी लत से पल्ला छुड़ाना चाहता हो लेकिन सफल न हो पा रहा हो, उस लत के शिकंजे में बुरी तरह से जकड़ गया हो तो ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु पूज्य बापूजी के संकल्प-सामर्थ्य का थोड़ा-सा भी सहारा उसकी जीवन-वाटिका को स्वास्थ्य आदि के सुमधुर पुष्पों से सुवासित कर सकता है । उसके पूरे परिवार को उजड़ने से बचा सकता है ।

यही हुआ विशाखापटनम् एवं हरदा में आयोजित सत्संग-कार्यक्रमों में । पूज्यश्री ने अपनी उदार वाणी में कहा कि ''मुझे तुमसे दक्षिणा में चीज-वस्तु, रुपये-पैसे आदि कुछ नहीं चाहिए । जो भाई धूम्रपान, पान-मसाला आदि छोड़ने का वचन देते हैं एवं जो माताएँ-बहनें लाली-लिपस्टिक आदि छोड़ने का वचन देती हैं, वे हाथ ऊपर करें । मैं इसीको दक्षिणा समझ लूँगा ।''

इस पर हजारों भाई-बहनों ने हाथ ऊपर कर अपनी सहमति दी । पूज्यश्री ने शंख बजाकर उन्हें अपनी दैवी संकल्पशक्ति का सहारा दिया । इस तरह अब तक देश-विदेश के लाखों लोग व्यसनमुक्त होकर अपना जीवन खुशहाल बना चुके हैं । यदि आपको भी इस व्यसनरूपी दानव ने जकड़ रखा है तो घबराइये मत, जीवन बरबाद न कीजिये, इससे छुटकारा संभव है ।

हरदा के सत्संग-कार्यक्रम के दौरान पूज्यश्री के करकमलों से चारखेड़ा ग्राम के नवनिर्मित आश्रम का उद्घाटन संपन्न हुआ । १७ व १८ फरवरी को इसी आश्रम में पूज्यश्री का निवास रहा । १८ फरवरी को संपन्न हुए भंडारे में गरीबों को भोजन के साथ दक्षिणा, बर्तन, खजूर, फल आदि का वितरण किया

गया। **पूज्यश्री ने आम जनता को ग्रीष्म ऋतु में ज्ञानतंतुओं की रक्षा व ग्रीष्मजन्य विकृतियों से बचाव हेतु सिर पर टोपी पहनने की सलाह दी।**

यहाँ के निर्धनों में आश्रम की ओर से टोपियाँ भी वितरित की गयीं।

अगले ही दिन (१९ फरवरी) से **पिपरिया (म.प्र.)** में दो दिवसीय सत्संग-कार्यक्रम शुरू हुआ, जहाँ पूज्यश्री ने 'श्रीमद्भगवद्गीता' व 'श्रीमद्भागवत' के सुबोध निरूपण के अलावा दैनिक जीवन को चिंता, भय व दैन्य से मुक्त और खुशहाल बनाने हेतु सचोट एवं अनुभूत उपाय बताये।

उक्त सभी कार्यक्रमों में पूज्यश्री के सत्संग-प्रवचनों के साथ ही श्री सुरेशानंदजी के भी सत्संग-प्रवचन हुए।

बरेली, जि. रायसेन (म.प्र.) में २० फरवरी की शाम को श्री सुरेशानंदजी का प्रवचन हुआ। २१ फरवरी को पूज्यश्री के बरेली आगमन एवं दर्शन-सत्संग से स्थानीय जनता रोमांचित हो उठी। एक सत्र के लिए ही सही, आत्मारामी सद्गुरुदेव को अपने करीब पाकर स्थानीय समिति व जनता के हृदयानंद का पारावार न रहा। वह खुशी से झूम उठी। जय-जयकार से गूँज उठा गगनमंडल ! भला और कैसे करते वे अपने हृदयस्थ भावों की अभिव्यक्ति !

बरेली से भोपाल जाते हुए पूज्यश्री बाड़ी ग्राम स्थित आदिवासी छात्रालय में गये। वहाँ उन्होंने विद्यार्थियों को सफलता के गुर बताये। विद्यार्थियों में सत्साहित्य एवं नोटबुकों का निःशुल्क वितरण भी किया गया।

२४ से २७ फरवरी तक मध्य प्रदेश की राजधानी, भोजनगरी **भोपाल** में चार दिवसीय ऐतिहासिक सत्संग-समारोह का आयोजन हुआ। चारों दिन सत्संग-स्थल लाल परेड ग्राउंड पर सिंहस्थ कुंभ-सा नजारा देखने को मिला। इस सत्संग-समारोह के संयोजक म.प्र. के मुख्यमंत्री श्री बाबूलाल गौर सत्संगियों के साथ बैठकर सत्संग-लाभ लेते रहे। उन्होंने गद्गद कंठ से कहा : ''मेरा संतश्री के चरणों में कोटि-कोटि नमन ! ऐसा महान, शांतिपूर्ण आध्यात्मिक उत्सव मैंने अपने जीवन में पहली बार देखा है। मध्य प्रदेश के ५७ साल के इतिहास में इतना बड़ा सत्संग-आयोजन भोपाल में पहली बार हुआ है।

अगर पूज्य बापूजी आदेश करेंगे तो मैं साधु बनने को भी तैयार हूँ, क्योंकि संत का शिष्यत्व स्थायी है जबकि मुख्यमंत्री पद अस्थायी है।''

सत्संग के शुभारंभ-दिवस से आखिरी दिन तक लाखों लोगों के बैठने की क्षमतावाला विशाल पंडाल रोज बढ़ाया जाता रहा, किंतु श्रद्धालुओं की संख्या अनुमान से कहीं अधिक बढ़ जाती थी और पंडाल पुनः नन्हा साबित हो जाता था। पंडाल के तीनों तरफ धूप में खड़े होकर भी लोग इन आत्मानुभव-संपन्न संत के दर्शन-सत्संग से अपने को धनभागी बनाते रहे। संतश्री के प्रति, अध्यात्म के प्रति राजधानी के लोगों की श्रद्धा-आस्था का सैलाब उमड़ता ही रहा।

पक्ष-विपक्ष के सभी मान्यवरों ने पूज्य बापूजी के सत्संग में उपस्थित होकर अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित किये। उनमें प्रमुख थे : पूर्व मुख्यमंत्री सुश्री उमा भारती, पूर्व मुख्यमंत्री श्री सुंदरलाल पटवा, लोक निर्माण एवं संसदीय कार्य मंत्री श्री कैलाश विजयवर्गीय, म.प्र. भाजपा के संगठन महामंत्री प्रो. कप्तानसिंह सोलंकी, वनमंत्री चौधरी चंद्रभानसिंह, राजस्व मंत्री श्री दिलीप भटेरे।

लोगों को डराती और तंग करती है सरकार

उदारीकरण के मूल में एक सिद्धांत है कि कामकाजी प्रतिभा के रास्ते को सरल बना दिया जाय। डॉ. मनमोहन सिंह अगर वास्तव में भारत में उदारीकरण चाहते हैं तो इसके लिए जटिल आर्थिक योजनाएँ लागू करने की नहीं, बल्कि बहुत सरल आर्थिक योजनाएँ, नीतियाँ व अन्य योजनाएँ बनाने की आवश्यकता है। नौकरशाही को सीमित किया जाय तथा उस निरर्थक पाँच गुना भारी-भरकम कागजी कार्रवाई को कम कर दिया जाय, जिससे कि हर धनवान, गरीब या मध्यमवर्गीय

भारतीय त्रस्त होता है ।

क्या आप जानते हैं कि मुंबई में एक रेस्टोरेन्ट खोलने के लिए विभिन्न विभागों से लगभग ६३ अनुमति-पत्र प्राप्त करने आवश्यक हैं । कुछ लोग इस संख्या को ७२ तो कुछ ९६ तक बताते हैं। ईश्वर न करे यदि इनमें से किसी एक की भी अनुमति लेना आप भूल गये तो आपको शेष जीवनभर इसका भारी मूल्य चुकाना होगा । कोई-न-कोई रोज ही आपके दरवाजे पर आकर आपका जीना कठिन कर देगा।

जरा विदेश यात्रा से भारत लौटकर तो देखें । एयरपोर्ट पर आपको भी उन लोगों की लंबी कतार में लगना पड़ेगा, जिनके पासपोर्ट भलीभाँति जाँचे जाते हैं । भले ही आप कुछ दिन के विदेश-भ्रमण से भारत लौटे हों । किसी भी अन्य देश में उसके नागरिकों के लिए यह प्रक्रिया अपनायी जाना आवश्यक नहीं है । इससे भी बढ़कर यह कि आपको इमिग्रेशन (देशांतरवास) और कस्टम (सीमा-शुल्क) के फॉर्म भी भरने होते हैं । इसके बाद आप लाल या हरे किसी भी कस्टम चैनल से निकलें, एक बात तय है कि आपके सामान का एक्स-रे होगा । जब तक आपके सामान का एक्स-रे होगा तब तक आपको यूनिफार्म पहने कई व्यक्ति ऊपर से नीचे तक ऐसे घूरते रहेंगे जैसे आप कोई तस्कर या आतंकवादी हों ।

सरकारी तंत्र को अपने कामकाज के तरीकों और कानून-कायदों को सरल बनाने की जरूरत । भारी-भरकम कागजी कार्रवाई से हर वर्ग के नागरिक त्रस्त ।

जरा किसीके लिए राशन कार्ड लेने की कोशिश करके देखें, पासपोर्ट को रिन्यू कराने, इनकमटैक्स अधिकारी की जाँच के प्रश्नों के उत्तर देने या धन-वापसी का प्रयास करके देखें। अपनी सरकारी नौकरी से रिटायर होने के एक वर्ष के भीतर पेंशन प्राप्त करने, किसी संपत्ति को खरीदने के लिए भूमि-सम्बंधी कागजात को जाँचने के लिए प्राप्त करने की कोशिश करके देखें, किसीके द्वारा ठगे जाने पर उसके विरुद्ध आपराधिक मामला दर्ज कराने की कोशिश करें, नेट से पुस्तकें खरीदकर उन्हें कस्टम से क्लियर करवाकर देखें, अपने घर के सामने के कूड़ेदान में से कूड़ा नियमित उठाये जाने के लिए कहें - भारत में कुछ भी करना आसान नहीं है। नयी कार या टेलिफोन कनेक्शन पाने के अतिरिक्त और कुछ पाना आसान नहीं है (क्योंकि सरकार का अब इनमें अधिक हस्तक्षेप नहीं रहा) ।

अधिकांश नागरिकों के लिए सरकार का अस्तित्व केवल उन्हें परेशान व भयभीत करने के लिए है । मजे की बात तो यह है कि सरकारी कर्मचारी भी समान रूप से त्रस्त होते हैं। बरसों बाद उनकी पेंशन लागू होती है । चिकित्सकीय उपचार पाना भी आसान नहीं होता। अस्पताल में भर्ती होना तो और भी कष्टसाध्य होता है। कार्यालय की सेवा से बाहर हो जाने के बाद उन्हें एक किनारे कर दिया जाता है । जब कार्यालय में काम करते हैं तो उनके राजनीतिक आका उन्हें अपना सेवक समझते हैं । इनमें से अधिकतर कर्मचारी इधर कुआँ तो उधर खाई वाली स्थिति में होते हैं। यदि वे अपने आका की ही बात सुनते हैं तो उनसे पटरी बैठ जाती है और यदि वे मना कर देते हैं तो उन पर सतर्कता विभाग द्वारा जाँच बिठा दी जाती है या उन्हें नक्सलवाद-प्रभावित क्षेत्रों में भेज दिया जाता है।

यदि डॉ. सिंह भारत का उदारीकरण चाहते हैं तो उन्हें इन सबका समाधान करना होगा । प्रयास करना होगा कि किसी भी भारतीय नागरिक को इस तरह की परेशानी न झेलनी पड़े। हम जिस सम्मान, विश्वास और प्रतिष्ठा के योग्य हैं, राष्ट्र को वह सब हमें देना होगा । एक उदार भारत, ऐसा भारत हो जहाँ नागरिक अपना सिर ऊँचा करके चल सके, उसे हर समय अपने पर संदेह होने या अपने गलत होने का भय न हो । कानून निरपराध लोगों को परेशान करने के लिए नहीं, बल्कि दोषियों को पकड़ने के लिए हो । यदि सरकार इसका निराकरण कर लेती है तो हर एक नागरिक के लिए जीवन सहज हो जायेगा। तब कोर्ट में उन केसों की भरमार नहीं होगी जिन्हें दर्ज करने की जरूरत ही नहीं होती है ।

- प्रीतीश नंदी

2-15 OF EVERY MONTH. ✲ MBI PATRIKA CHANNEL, MUMBAI-101, WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. NW-9 REGD NO. TECH/47-833/2003-05 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH. ✲ FOREIGN POSTING 5 & 6 OF EVERY MONTH FROM AIRPORT PO. - 400099. ✲ DELHI REGD. NO. DL-11513/2003-05 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2003-05 POSTING FROM DELHI 5-6 OF EVERY MONTH.
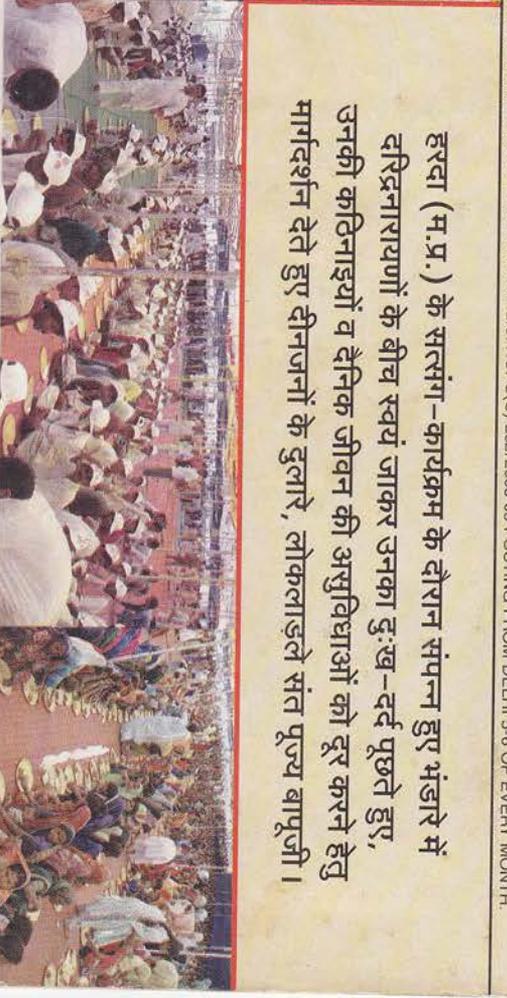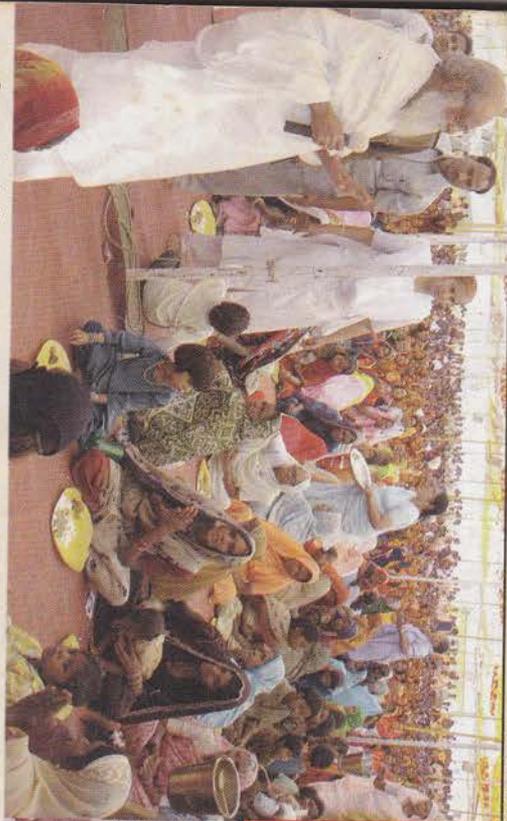
हरदा (म.प्र.) के सत्संग–कार्यक्रम के दौरान संपन्न हुए भंडारे में दरिद्रनारायणों के बीच स्वयं जाकर उनका दुःख–दर्द पूछते हुए, उनकी कठिनाइयों व दैनिक जीवन की असुविधाओं को दूर करने हेतु मार्गदर्शन देते हुए दीनजनों के दुलारे, लोकलाड़ले संत पूज्य बापूजी।

इस विशाल भंडारे में हरदा व आस–पास के क्षेत्रों से हजारों की संख्या में आये हुए दरिद्रनारायणों में भोजन–प्रसाद के साथ–साथ दक्षिणा, टोपी, वस्त्र व अन्य जीवनोपयोगी सामग्री वितरित की गयी।
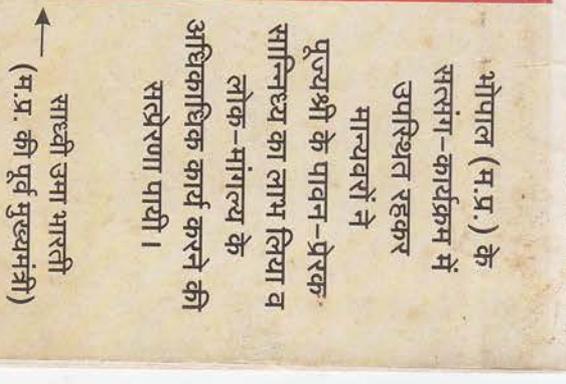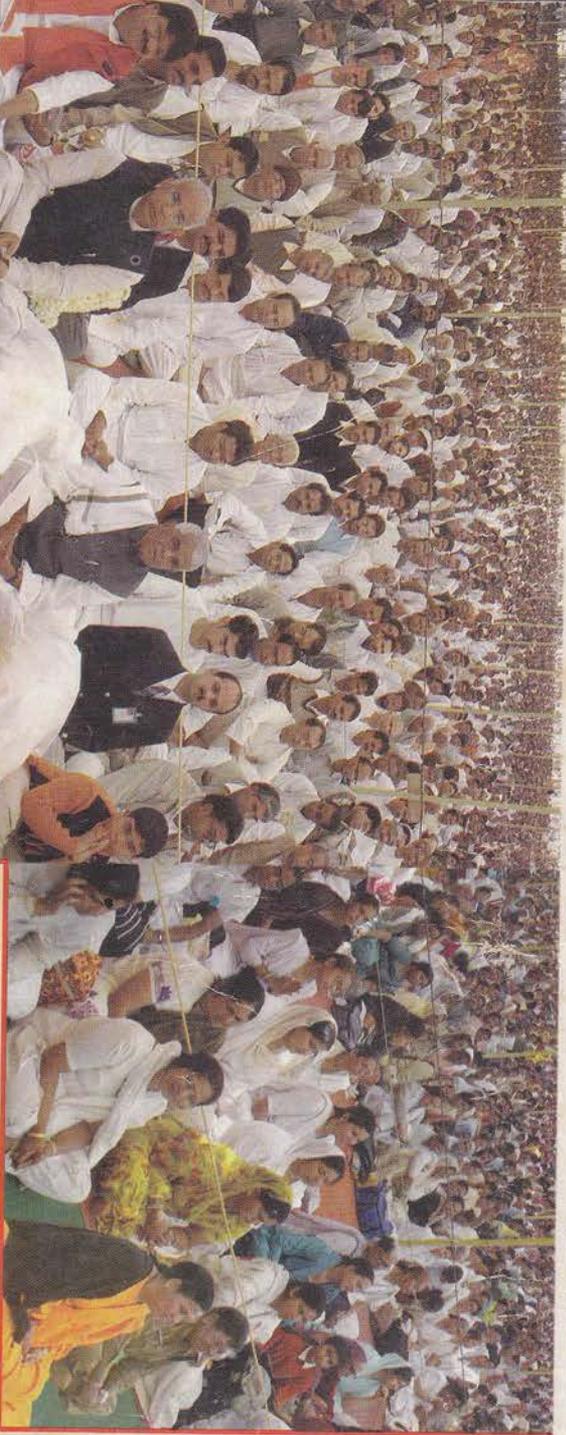
भोपाल (म.प्र.) के सत्संग–कार्यक्रम में उपस्थित रहकर मान्यवरों ने पूज्यश्री के पावन–प्रेरक सान्निध्य का लाभ लिया व लोक–मांगल्य के अधिकाधिक कार्य करने की सत्प्रेरणा पायी।

← साध्वी उमा भारती (म.प्र. की पूर्व मुख्यमंत्री)

↖ श्री कैलाश विजयवर्गीय (लोक निर्माण एवं संसदीय कार्य मंत्री)

↖ श्री कप्तानसिंह सोलंकी (म.प्र. भाजपा संगठन महामंत्री)

↖ श्री बाबूलाल गौर (म.प्र. के मुख्यमंत्री)

सत्संग के दरिया में उमड़ रहीं हरिरस की लहरें।
बड़े–छोटे सभी जनों को बापूजी आत्मरस से स्नान करायें॥